६१	१२	आठलाख लक्षणों	आठ लक्षणों
७७	श्लोक की २ री	सवाऽऽयम्	सवाऽऽसम्
७८	,, ३ री	त्वं	त्वां
९२	२०	चन्द्रछाप	चन्द्रछाय
९३	१	दकर्मी	दकमी
१०३	१	हरिवंश	सुमित्र
१०६	२	कुंभज	कुम्भ

पृष्ट ६७ की २ री पंक्ति में, 'छद्मस्थावस्था में' के साथ "और शेष केवली अवस्था में' और पढ़ा जावे।

प्रत्येक चरित्र का 'पूर्वभव' शीर्षक, प्रारम्भिक श्लोक के नीचे होना चाहिए था, परन्तु ऊपर है, इसे श्लोक के नीचे समझा जावे।

श्री तीर्थङ्कर-चरित्र।

[द्वितीय भाग]

लेखक—
श्री बालचन्द श्रीश्रीमाल

१३

भगवान श्री विमलनाथ ।

पुर्व भव ।

श्लोक: —

निहासने गत सुपात्र समेत देव
देवे हितं सकमलं विमलं विभाति ।
आनर्चयो जिनवरं तमने जनौघो
देवे हितं सकमलं विमलं विभाति ॥

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व विदेह में, भरतक्षेत्र के अन्तर्गत महापुरी नाम की एक नगरी थी। वहाँ, पद्मसेन नाम का प्रतापी और धर्मपरायण राजा राज्य करता था। समय पाकर, पद्मसेन संसार से विरक्त हो सर्वगुप्त आचार्य के समीप संयम में प्रव्रजित हो गया। जिस प्रकार, निर्धनपुरुष धन और निःसन्तान पुरुष पुत्र पाकर उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करता है, उसी प्रकार पद्मसेन ने भी संयम का निरतिचार पालन किया। संयम पालन के साथ ही, अर्हद्भक्ति आदि द्वारा तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया और अन्त में शरीर त्याग सहस्रार कल्प में अठारह सागरोपम की आयु का देव हुआ।

अंतिम भव।

मध्य जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में, पंजाब देश के अन्तर्गत 'कांपिलपुर' नाम का एक रमणीय नगर था। वहाँ, कर्तवर्म नामका समृद्ध राजा राज्य करता था। उसके अन्तःपुर में, श्यामा नाम की पटरानी थी, जो स्त्रियोचित समस्त गुणों से सम्पन्न थी।

सहस्रार देवलोक का आयुष्य भोग कर पद्मसेन का जीव, वैशाख शुक्ल १२ की रात को—जब चन्द्र का योग उत्तराभाद्र-

पद नक्षत्र के साथ हुआ—महारानी श्यामा देवी की कुक्षि में आया। सोई हुई महारानी श्यामा देवी, तीर्थङ्कर के जन्मसूचक चौदह महास्वप्न देखकर जाग उठीं और पति से स्वप्नों का फल सुन, प्रसन्नता सहित गर्भ का पोषण करने लगीं।

गर्भकाल समाप्त होने पर, माघ शुक्ल ३ की मध्य रात्रि को—सब ग्रह नक्षत्र उच्च होने पर—महारानी श्यामा ने, शूकर के चिन्हवाले स्वर्णवर्णी अनुपम पुत्र को जन्म दिया। उस समय तीनों लोक में प्रकाश हुआ।

आसनकम्प एवं अवधिज्ञान के द्वारा, इन्द्रों ने भगवान का जन्म हुआ जाना। वे, देवों सहित सुमेरु गिरि पर पाण्डु वन में—जहाँ पांडुकबल नाम की अर्द्धचन्द्राकार शिला है और उसपर अभिषेक-सिंहासन है—भगवान का जन्मकल्याण मनाने गये। भगवान का जन्मकल्याण मनाकर, भक्तिपूर्वक वन्दन एवं पूजा स्तुति करके, भगवान को माता के पास लाकर रख दिये और भगवान के अँगूठे में, अमृत भर कर, इन्द्र तथा देवता अपने-अपने स्थान को गये।

प्रातःकाल महाराजा कर्तृवर्म ने, पुत्रजन्मोत्सव मनाकर, पुत्र का नाम विमलकुमार रखा। इन्द्र की आज्ञा से, देवांगनाएँ भगवान का लालन पालन करने लगीं। भगवान विमलकुमार, गिरिकन्दरा की लता के समान सुखपूर्वक वृद्धि पाने लगे।

अनुक्रम से बाल-अवस्था समाप्त करके भगवान, युवावस्था में प्रविष्ट [illegible] भगवान का [illegible] धनुष ऊँचा, और एक सहस्र आठ [illegible] से युक्त [illegible] शरीर [illegible] ही अधिक शोभायमान [illegible] भगवान को [illegible], माता-पिता ने, भगवान [illegible] का विवाह कर दिया। भगवान आनन्द से [illegible] लगे।

[illegible] कुमार की आयु पन्द्रह लाख वर्ष की [illegible] भार दिया। भगवान कौशल- [illegible] का पालन करने लगे। भगवान ने, [illegible] किया।

[illegible] संसार [illegible] संयम स्वीकार करने [illegible] लौकान्तिक देवों ने आकर [illegible], अब समय आगया है, [illegible] और देवताओं की प्रार्थना के [illegible] हो वार्षिक दान देने

[illegible] निष्क्रमणोत्सव सुर-असुर [illegible] शिविका में, आरूढ़ [illegible] सहस्राम्र बाग में पधारे। वहाँ, [illegible] भगवान ने पंच मुष्टि लोच किया। इन्द्र ने भगवान के सुकोमल केश क्षीर-सागर में क्षेपण किये और

जब जन-समूह का कोलाहल शान्त हुआ, तब भगवान विमलनाथ ने, सिद्ध भगवान को नमस्कार करके, छट्ठ के तप में, माघ शुक्ला ४ के दिन, एक हजार राजाओं के साथ संयम स्वीकार किया। संयम स्वीकारते ही, भगवान को मन:पर्यय ज्ञान हुआ।

चारित्र स्वीकार करके भगवान, कम्पिलपुर से अन्यत्र विहार कर गये। दूसरे दिन धान्यकूट नगर में, जय राजा के यहाँ परिमान्न से भगवान का पारणा हुआ।

संयम पालन करते हुए और अनेक अभिग्रह धारण करते हुए, भगवान, निस्पृह होकर जन-पद में विचरने लगे। दो मास तक, भगवान, छद्मस्थ अवस्था में विचरते रहे और फिर कम्पिलपुर के उसी उद्यान में पधारे। वहाँ, भगवान ने जम्बू वृक्ष के नीचे क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हो, क्रमशः मोहकर्म की प्रकृतियों को खपाया और फिर शुक्ल ध्यान में लीन हो, घातिक कर्म नष्ट कर, केवल ज्ञान प्राप्त किया।

भगवान विमलनाथ को केवल ज्ञान हुआ है, यह जान इन्द्र और देवता, सपरिवार, केवलज्ञान महोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने, केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई। द्वादश प्रकार की परिषद् एकत्रित हुई। भगवान ने दिव्य वाणी का प्रकाश किया, जिससे अनेक जीव बोध पाये।

विहार कर गये।

तीन वर्ष तक अनेक ग्राम नगर में अप्रमत्त अवस्था में विचरते रहने के पश्चात् भगवान, अयोध्या नगरी के उसी सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे, ध्यानस्थ प्रभु, क्षेपी आरूढ़ हुए और घातिक कर्मों को नष्ट करके वैशाख कृष्णा १४ को—जब चन्द्र का रेवती नक्षत्र के साथ योग हुआ—केवलज्ञान रूपी अनन्त विभूति के स्वामी बने। भगवान को केवलज्ञान होते ही, तीनों लोक में प्रकाश हुआ।

अवधिज्ञान द्वारा इन्द्र और देवताओं ने जाना, कि भगवान अनन्तनाथ को केवलज्ञान हुआ है। वे, तत्क्षण अपनी सब विभूति सहित, भगवान का केवलज्ञानोत्सव करने और भगवान की दिव्यवाणी श्रवण करने के लिए उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई। भगवान ने द्वादश प्रकार की परिषद् के सम्मुख, अमोघवाणी का प्रकाश किया। भगवान की वाणी सुन कर, अनेक भव्य जीव, प्रतिबोध पाये।

भगवान, विचरते-विचरते द्वारकापुरी में पधारे। उस समय द्वारकापुरी में, पुरुषोत्तम नाम के चौथे वासुदेव और सुप्रभ नाम के चौथे बलदेव तीन खण्ड पृथ्वी का शासन कर रहे थे। उद्यान रक्षक ने, इन चौथे हरि हलधर को, भगवान के पधारने की बधाई दी। वासुदेव ने, सिंहासन से उठ कर, वहाँ से

भगवान को [illegible] को नमस्कार देकर विदा किया [illegible] भगवान को वन्दना करने के [illegible] भगवान के छत्र चामर आदि [illegible] से नीचे उतर पड़े। उन्होंने [illegible] समवशरण में प्रवेश किया। भक्ति-[illegible] अपने साथियों सहित वासुदेव, इन्द्र के [illegible] भगवान ने भवसागर से तारनेवाली वाणी का प्रवाह [illegible] जिस [illegible] करके अनेक भव्य जीव, बोध पाये और [illegible] बहुतों ने, श्रावकव्रत स्वीकार किये, तथा पुरुषोत्तम [illegible] ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

भगवान अनन्तनाथ के, यशोधर आदि पचास गणधर [illegible] छाँसठ सहस्र मुनि थे। बाँसठ सहस्र सतियाँ थीं। [illegible] हजार श्रावक थे और चार लाख चौदह सहस्र श्राविका [illegible] इनके सिवा, अनेक भव्य जीव, सम्यक्त्वधारी भी थे।

भगवान अनन्तनाथ, तीन वर्ष कम साढ़े सात लाख [illegible]

भगवान, उपनेता, विन्नेता और पुरोधा थे-[illegible] [illegible] से, चौ[illegible]
महा पुरुष अपनी पवित्र [illegible]
की रचना कर [illegible]

तक केवली पर्याय में विचरे। अपना निर्वाण काल समीप जान सात सौ मुनियों सहित भगवान, सम्मेत शिखर पर पधार गये। सम्मेत शिखर पर भगवान ने, अनशन कर लिया। अन्त में, चैत्र शुक्ल ५ के दिन पुष्य नक्षत्र में, भगवान अनन्तनाथ, शैलेशी अवस्था को प्राप्त करके, सब कर्मों से रहित हो, सिद्ध पद को प्राप्त हुए। भगवान अनन्तनाथ का निर्वाण, भगवान विमलनाथ के निर्वाण से नव सागरोपम पश्चात् हुआ था।

प्रश्नः—

१—पूर्वभव में भगवान अनन्तनाथ कौन थे, कहाँ रहते थे और किस करणी से किस गति को प्राप्त हुए थे ?

२—भगवान अनन्तनाथ के माता-पिता और जन्मस्थान का नाम ?

३—भगवान के समकालीन वासुदेव बल्देव कौन थे ?

४—भगवान ने कुल कितनी आयु भोगी और किस-किस कार्य में कितनी-कितनी ?

५—गणधर किन्हें कहते हैं ?

६—कुल कितने इन्द्र हैं और कौन किन-किन देवताओं के ?

७—भगवान अनन्तनाथ के निर्वाण में और भगवान विमलनाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा ?

[illegible] उद्यान रक्षक को पुरस्कार देकर [illegible] वैभव सहित, भगवान को [illegible] के उद्यान में आये। भगवान के [illegible] स्थित हो, वासुदेव हाथ से नीचे [illegible] और नम्रतापूर्वक समवशरण में [illegible] वन्दना नमस्कार करके, अपने [illegible] के पीछे बैठ गये। भगवान ने, [illegible] का प्रवाह बहाया, जिसे श्रवण [illegible] पाये और संयम में प्रवर्जित हुए। [illegible] किये तथा पुरुषोत्तम अर्द्धचक्री ने, [illegible]।

[illegible] के यशोधर आदि पचास गणधर* थे। [illegible] सहस्र सतियाँ थीं। दोलाख छः [illegible] लाख चौदह सहस्र श्राविका थीं [illegible] सम्यक्त्वधारी भी थे।

[illegible] तीन वर्ष कम साढ़े सात लाख व

[illegible] परमात्मा, जिनेश्वर और सुरेश्वर ये-त्रिपदी-फर्मा [illegible] महापुरुष अपनी पवित्र और निर्मल बुद्धि से, चौ: [illegible] की रचना कर लेते हैं, उन महापुरुषों को गणध[illegible]

—लेखक

धातकी खण्ड के पूर्व महाविदेह में, भरत विजय के अन्तर्गत भद्दिल नाम का एक नगर था। वहाँ दृढ़रथ नाम का पराक्रमी राजा राज्य करता था। दृढ़रथ ने, अपने पड़ोसी अनेक राजाओं को जीतकर अपने अधीन कर रखा था। इतना होते हुए भी, दृढ़रथ धर्म-सेवा को न भूला था, अपितु धर्म की आराधना करता रहता और संसारिक कार्यों में, जल कमलवत् अलिप्त रहता था। समय पाकर दृढ़रथ ने, सांसारिक ऋद्धि को, उसी प्रकार त्याग दी, जिस प्रकार मल त्यागा जाता है, और विमलवाहन गुरु से, संयम स्वीकार किया। दुस्तर तप और अर्हद्-भक्ति आदि बोलों की उत्कृष्ट भाव से आराधना करके दृढ़रथ ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में, समाधि मरण से शरीर त्याग, वैजयन्त विमान में तत्तोस सागर की आयुवाला देव हुआ।

अन्तिम भव।

जम्बू द्वीप के दक्षिण विभाग में, भरतक्षेत्र के अन्तर्गत, रत्नपुर नाम का नगर था जो बहुत ही रमणीय और सब प्रकार से समृद्ध था। वहाँ, भानु नाम के राजा राज्य करते थे। महाराजा भानु की रानी का नाम सुव्रता था, जो अपने पवित्र आचरण से

धातकी खण्ड के पूर्व महाविदेह में, भरत विजय के अन्त-र्गत भद्दिल नाम का एक नगर था। वहाँ दृढ़रथ नाम का पराक्रमी राजा राज्य करता था। दृढ़रथ ने, अपने पड़ोसी अनेक राजाओं को जीतकर अपने अधीन कर रखा था। इतना होते हुए भी, दृढ़रथ धर्म-सेवा को न भूला था, अपितु धर्म की आराधना करता रहता और सांसारिक कार्यों में, जल कमलवत् अलिप्त रहता था। समय पाकर दृढ़रथ ने, सांसारिक ऋद्धि को, उसी प्रकार त्याग दी, जिस प्रकार मल त्यागा जाता है, और विमलवाहन गुरु से, संयम स्वीकार किया। दुष्कर तप और अर्हद्-भक्ति आदि बोलों की उत्कृष्ट भाव से आराधना करके दृढ़रथ ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में, समाधि मरण से शरीर त्याग, वैजयन्त विमान में तेंतीस सागर की आयुवाला देव हुआ।

अन्तिम भव।

जम्बू द्वीप के दक्षिण विभाग में, भरतक्षेत्र के अन्तर्गत, रत्नपुर नाम का नगर था जो बहुत ही रमणीय और सब प्रकार से समृद्ध था। वहाँ, भानु नाम के राजा राज्य करते थे। महाराज भानु की रानी का नाम सुव्रता था, जो अपने पवित्र आचरण से

आग्रह से भगवान धर्मनाथ ने, पुण्य-फल भोगने के लिए विवाह किया। पत्नी सहित भगवान, आनन्द-पूर्वक रहने लगे।

भगवान धर्मनाथ की अवस्था जब ढाई लाख वर्ष की हुई, तब महाराजा भानु ने राजपाट भगवान को सौंप दिया। पाँच लाख वर्ष तक भगवान धर्मनाथ, पिता के सौंपे हुए राज्य को नीति-पूर्वक चलाते रहे। एक दिन भगवान ने विचार किया, कि अब मेरे भोगफल देने वाले कर्म निश्शेष होने आये हैं, इसलिए मुझे, स्व पर कल्याणार्थ धर्म और तीर्थ की प्रवृत्ति करनी चाहिए। इतने ही में ब्रह्मलोकवासी लोकान्तिक देवों ने उपस्थित होकर भगवान से प्रार्थना की, कि—हे प्रभो, अब समय आगया है, इसलिए धर्मतीर्थ प्रवर्ताइये। स्वयं के विचार एवं देवों की प्रार्थना को ध्यान में लेकर, भगवान ने राजपाट त्याग वार्षिकदान देना प्रारम्भ कर दिया।

वार्षिकदान की समाप्ति पर, इन्द्र तथा देव, भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाने के लिए उपस्थित हुए। दीक्षाभिषेक हो जाने के पश्चात् भगवान, नगर के बाहर उद्यान में पधारे। वहाँ, माघ शुक्ला १३ के दिन एक सहस्र राजाओं सहित भगवान, संयम में प्रव्रजित हो गये। संयम स्वीकार करते ही भगवान धर्मनाथ को, मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, रत्नपुर से विहार कर गये। दूसरे

बहुत हर्षित हुए। उन्होंने, सिंहासन से उठकर, वहीं से भगवान को वन्दन किया और उद्यान-रक्षक को पुरस्कार दिया। पश्चात् पाँचवें वासुदेव पुरुषसिंह, अपनी सब ऋद्धि एवं सुदर्शन बलदेव सहित, भगवान को वन्दन करने के लिए उद्यान में आये। भगवान को विधिवत वन्दना नमस्कार करने के पश्चात्, वासुदेव और बलदेव, इन्द्र के पीछे बैठ गये। भगवान ने, दिव्य-वाणी प्रकाशित की जिसे सुनकर अनेक भव्य जीवों ने, आत्म-कल्याण का मार्ग पकड़ा और वासुदेव ने भी सम्यक्त्व स्वीकार किया।

भगवान धर्मनाथ ने, दो वर्ष कम ढाई लाख वर्ष केवली पर्याय में विचरते रह कर, अनेक भव्य जीवों का कल्याण किया। भगवान के रिष्ट आदि तैंतालिस गणधर थे। चौंसठ हजार मुनि थे। बासठ हजार चार सौ साध्वियाँ थीं। दो लाख चालीस हजार श्रावक थे और चार लाख तेरह हजार श्राविका थीं। इनके सिवा अनेक भव्य जीव, सम्यक्त्व—धारी भी हुए।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान धर्मनाथ, एक सौ आठ मुनियों को लेकर, सम्मेद शिखर पर पधार गये। वहाँ भगवान ने सदा के लिए अनशन कर लिया। अन्त में, ज्येष्ठ शुक्ल ५ के दिन पुष्य नक्षत्र में, भगवान, निर्वाण पधारे। देवता तथा इन्द्रों ने, भगवान के शरीर का अन्तिम संस्कार किया और अठाई महोत्सव करके अपने-अपने स्थान को गये।

१६

भगवान श्री शान्तिनाथ ।

पूर्व भव ।

श्लोक :—

यंस्तौति शान्ति जिनमिन्द्र ततिर्नितान्तं
श्री जात रूपतनु कान्त रसाभिरामम् ।
शान्ति सुरीभिरामि नूतनुदन् सनुन्नः
श्री जात रूप तनुकान्त रसाभिरामम् ॥

इन्द्रभूति शिवभूति के अध्यापन अध्ययन को सुन सुनकर, वेद का पारगामी हो गया। कुछ दिन पश्चात् कपिल, विदेश चला गया। घूमते फिरते कपिल, रत्नपुर नगर में आया। रत्नपुर नगर के बाहर, सत्यकी उपाध्याय की पाठशाला में जाया करता था। सत्यकी उपाध्याय ने, कुशाग्र बुद्धि कपिल को कुलवान जानकर, उसके साथ अपनी सत्यभामा नामी कन्या का विवाह कर दिया। कपिल, सत्यभामा के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगा। नागरिकों के लिए कपिल प्रतिष्ठापात्र बन गया था।

एक रात कपिल नाटक देखने गया। रात अधिक हो गई थी। वह जब घर जाने लगा, तब वर्षा होने लगी। कपिल ने सोचा कि मार्ग में कोई आदमी तो है नहीं, फिर कपड़े क्यों भिगोने दूँ! यह विचार कर कपिल ने शरीर के सब वस्त्र निकाल अपनी काँख में दाब लिये और नग्न शरीर घर को चला। घर आकर वह अपनी स्त्री सत्यभामा से कहने लगा, कि—देखो, मैंने अपनी विद्या के प्रभाव से, वर्षा होने पर भी कपड़े नहीं भीगने दिये। सत्यभामा ने देखा कि पति के कपड़े तो सूखे हैं, परन्तु इनका शरीर वर्षा से भीगा हुआ है। वह समझ गई, कि पति, नग्न होकर आये हैं और इनके हाथ पर ही कपड़े सूखे हैं, ऐसा जो पुरुष सज्जन का नग्न होकर चल सकता है, वह अवश्य ही कुलहीन है। पति को कुलहीन समझ कर, सत्यभामा

कहिन से विरक्त हो, श्रीक्षन राजा के पास आई, और अ[illegible]
राज से प्रार्थना करने लगी कि—हे महाराज, दुर्दैव से मुझे इ[illegible]
[illegible] है और मेरी इच्छा उसके साथ दाम्पत्य [illegible]
[illegible] करने की नहीं है, अत आप मुझे इस अकुलीन पति
[illegible] रक्षा करें। राजा ने, सत्यभामा की प्रार्थना स्वी[illegible]
[illegible] सम्बन्ध विच्छेद करा दिया। पति से छूटका[illegible]
[illegible], तप करती हुई, शील की रक्षा करने लगी
[illegible] की कन्या का नाम श्रीकान्ता था
[illegible] पुत्र कुमार इन्दुसेन को अपने [illegible]
[illegible] गई, स्वयंवरा होकर इन्दुसेन के घर आई
[illegible] अनन्तमतिका नाम की वेश्या भी आई
[illegible] और रूप सम्पन्ना थी, इस कारण इ[illegible]
[illegible] दोनों ही भाई उस पर मुग्ध हो गये, [illegible]
[illegible] बना कर आपस में लड़ने लगे। म[illegible]
[illegible] दोनों पुत्रों का आपसी कलह मिटाने
[illegible] किया परन्तु दोनों भाइयों में से कोई भी
[illegible] श्रीषेण ने, अपनी दोनों रानियों सहि[illegible]
[illegible] कर प्राण त्याग दिया। राजा और दोन[illegible]
[illegible] जान कर, शरणागत सत्यभामा भयभीत हु[illegible]
[illegible] कौन करेगा ! मेरा रक्षक राजा नहीं रह[illegible]

…इसलिए कहीं मुझे सतावेंगे, इस भय से सत्यभामा ने भी …दूरी कमल सूँघ कर शरीर छोड़ दिया।

… शुभ और सरल परिणामों के प्रभाव से, ये चारों जीव …त्तर कुरु क्षेत्र में, भोग प्रधान युगलियों के दो जोड़े के रूप में …त्पन्न हुए। वहाँ, तीन पल्योपम का आयुष्य भोग कर, विशु- …द्धि चारों ही जीव, प्रथम स्वर्ग में गये।

इन्दुसेन और बिन्दुसेन, दोनों आपस में युद्ध कर रहे थे। …क्रोध लोभ आदि के वशीभूत बने हुए दोनों कुमार, किसी के …भी समझाने से नहीं माने। उसी समय, विमान में बैठ कर …एक विद्याधर आया। वह युद्ध करते हुए दोनों कुमार के बीच …में खड़ा हो, हाथ ऊपर करके दोनों से कहने लगा कि—अरे …मूर्खों! जिस वेश्या के लिए तुम दोनों आपस में युद्ध कर …रहे हो, वह तो तुम्हारी—पूर्व-भव की—बहन है! तुम इस …बात को न समझ कर, अपनी [illegible] के लिए लड़ …रहे हो! तुम लोग मुझ से पूर्व-भव का वृत्तान्त सुनो। …विद्याधर की बात सुन कर दोनों ने युद्ध बन्द कर दिया और …विद्याधर से पूर्व भव का वृत्तान्त सुनने लगे। विद्याधर ने पूर्व …भव का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा, कि—तुम दोनों [illegible] …और वह वेश्या, पूर्व भव में—[illegible]—[illegible] थे, और …हैं, तुम दोनों [illegible]। तुम दोनों से मैं एक प्रश्न-

]

अर्ककीर्ति की पत्नी का नाम, ज्योतिर्माला था। श्रीषेण
[illegible]ा का जीव, ज्योतिर्माला की कोख से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ
[illegible]सका नाम, अमिततेज रखा गया। सत्यभामा का जीव भी,
[illegible]ोतिर्माला की कुक्षि से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका नाम
[illegible]तारा रखा गया। अर्ककीर्ति की पुत्री और त्रिपृष्ठ वासुदेव की
[illegible]नी स्वयंप्रभा की कोख से, अभिनन्दिता रानी का जीव पुत्र
[illegible]प में और शिखिनन्दिता रानी का जीव पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ।
[illegible]न दोनों के नाम क्रमशः श्रीविजय और ज्योतिर्प्रभा दिये।
[illegible]मय पाकर, अर्ककीर्ति की कन्या सुतारा का विवाह श्रीविजय
के साथ और ज्योतिर्प्रभा का विवाह अमिततेज के साथ
हो गया।

त्रिपृष्ठ वासुदेव का शरीरान्त होने के कुछ समय पश्चात्
[illegible]चल बलदेव संसार से विरक्त हो गये और संयम स्वीकार कर
लिया। तब पोतनपुर के राजा श्रीविजय हुए। उधर रथनुपुर
[illegible]का राज्य अमिततेज को सौंप कर, ज्वलनजटी और अर्ककीर्ति ने
[illegible] भी दीक्षा ले ली।

[illegible] एक समय, महाराजा अमिततेज, अपनी बहन सुतारा से
[illegible] मिलने के लिए पोतनपुर आये। उस समय, पोतनपुर [illegible]
। और विशेषतः पोतनपुर की राज सभा में, बड़ा ही [illegible]
हो रहा था। महाराजा श्रीविजय द्वारा [illegible]

के पश्चात्, महाराजा अमिततेज ने उनसे इस कम्प का कारण पूछा। महाराजा अमिततेज के प्रश्न के उत्तर में महाराजा श्रीविजय कहने लगे, कि आज से आठ दिन पहले, एक भविष्यवाणी करने वाला आया था। मैंने उस भविष्यभाषी से पूछा, कि तुम किस लिए आये हो? तुम्हारे आने का उद्देश्य कुछ याचना करना है, या किसी प्रकार का भविष्य बताने आये हो? उस भविष्यवक्ता ने कहा कि मैं याचक तो हूँ ही, लेकिन इस समय याचना करने नहीं आया हूँ किन्तु न कहने योग्य भविष्य की एक बात कहने के लिए आया हूँ जिससे रक्षत्यादि द्वारा दुर्भविष्य का प्रतिकार किया जा सके। मेरे पूछने पर उसने कहा, कि—'आज के सातवें दिन, पोतनपुर के राजा पर महाघात विद्युत्पात होगा।' यह कटु भविष्य सुन कर, मेरे प्रधान मन्त्री ने उस भविष्यभाषी से कहा, कि—जब पोतनपुर के राजा के ऊप बिजली गिरेगी उस समय तेरे पर क्या गिरेगा? उस भविष्य भाषी ने, प्रधानमन्त्री से कहा—मन्त्रीवर, आप मेरे पर क्यों होते हैं? मैं तो शास्त्र में जैसा देखता हूँ, वैसा कहता फिर भी आप पूछते हैं—इसलिए मैं आपसे कहता हूँ, कि समय मेरे ऊपर वस्त्राभूषण, मणिमाणिक और स्वर्णादि-द्रव्य होगी। भविष्यवक्ता की बात सुनकर, मैंने प्रधानमन्त्री कि—मन्त्री, इस पर कोप न करो, ये तो यथार्थ भवि

कहने के कारण उपकारी ही हैं। भविष्यवक्ता की बात सुनकर, मेरे मन्त्रीगण अपने राजा की रक्षा के लिए उपाय सोचने लगे। कोई कहने लगा कि समुद्र में विद्युत्पात नहीं होता, इसलिए महाराजा को समुद्र में रखा जावे। कोई, पर्वत की गुफा में रहने की सम्मति देने लगा। कोई यह कहने लगा कि भावी नहीं टलती, इसलिए कर्मनाश करने को तप करना चाहिए; क्योंकि तप का प्रभाव बहुत होता है।

इस तरह होते होते एक मन्त्री ने कहा कि इस भविष्यवक्ता की भविष्य वाणी के अनुसार पोतनपुर के राजा पर विद्युत्पात होगा, न कि श्रीविजय पर। इसलिए पोतनपुर का राजा किसी दूसरे को बना दिया जावे और तब तक महाराजा श्रीविजय, धर्मध्यान करते रहें। ऐसा करने से, अहित टल जावेगा। यह सुनकर उस भविष्यवक्ता ने ऐसा कहने वाले मन्त्री से कहा, कि—मेरे निमित्त ज्ञान से आपका मतिज्ञान निर्मल है। इसलिए जैसा आप कहते हैं। ऐसा ही करना ठीक है। तब मैंने कहा कि इस योजना के अनुसार तो जिसे भी राजा बनाया जावेगा, वह निरपराधी होने पर भी व्यर्थ में मारा जावेगा। ऐसा होना तो कदापि भी उचित नहीं है। क्योंकि चींटी से लगाकर, इन्द्र तक को अपना जीवन प्यारा है। राजा का कर्त्तव्य निर्बल की रक्षा करना है, और इसीलिए मैं हाथ में तलवार लेकर बैठा हूँ।

[illegible] रक्षा के लिए किसी निरपराधी की हत्या होने देना मैं [illegible] सकता है [illegible] बात सुन कर, वह मन्त्री [illegible] आपका भावी अनिष्ट भी दूर करता है, [illegible] नहीं करता है। अत वैश्रवण यक्ष की [illegible] सात दिन के लिए उसे यहाँ [illegible] उस मूर्ति की सेवा [illegible] [illegible] आपकी करते हैं।'

[illegible] गई। यक्ष-प्रतिमा [illegible] [illegible] में गया। वहाँ मैं पोषध करते [illegible] समय सहसा गर्जे घुमड़ [illegible] [illegible] यक्ष-प्रतिमा पर भयंकर [illegible] टुकड़े टुकड़े हो गये। [illegible]

[illegible] का भविष्यवाणी सत्य हु[illegible] [illegible] राजा की रक्षा हो सक[illegible] [illegible] से उस भविष्यवक्ता [illegible] की तुष्टि हुई। मैंने भी [illegible] [illegible] प्रदान किया और [illegible] [illegible] यक्ष की जो मूर्ति विद्युत्पात [illegible] [illegible] उसके स्थान पर मैंने रत्न की मूर्ति [illegible] दी

यह वृत्तान्त सुनाकर महाराजा श्रीविजय, महाराजा अमित-तेज से कहने लगे कि 'आप सर्वत्र जो उत्सव देख रहे हैं, वह मेरा अनिष्ट टल गया और मैं सकुशल बच गया, इस खुशी के कारण हो रहा है।' महाराजा श्रीविजय से यह वृत्तान्त सुनकर, महाराजा अमिततेज को भी बहुत प्रसन्नता हुई। महाराजा अमिततेज, अपनी बहन सुतारा से मिले। वस्त्राभूषण आदि से इन का सत्कार करके महाराजा अमिततेज अपने स्थान ो गये।

सत्यभामा के विरह से दुःखित कपिल ब्राह्मण, भव-भ्रमण रता हुआ, विद्याधरों की श्रेणी में, अश्विनीघोष नाम का राजा आ था। एक समय महारानी सुतारा सहित महाराजा श्रीविजय न-क्रीड़ा करने गये। अश्विनीघोष विद्याधर ने, वन में सुतारा ो देखा। पूर्वभव के स्नेह की प्रेरणा से अश्विनीघोष ने, प्रतारिणी वेद्या की सहायता से, सुतारा को हरण कर लिया। महाराजा ीविजय और महाराजा अमिततेज ने, अश्विनीघोष से युद्ध केया और उसे परास्त भी कर दिया। श्रीविजय और अमिततेज, अश्विनीघोष को अपना बन्दी बनाना चाहते थे, इसलिए इनने महाज्वाला विद्या को, अश्विनीघोष को पकड़ लाने की आज्ञा दी।

महाज्वाला, अश्विनीघोष को पकड़ने के लिए दौड़ी। अश्विनीघोष भागा। वह, वैताढ्य पर्वत छोड़ कर, भरतार्द्ध में

जन्म निरर्थक खो दिया। हमने आत्मकल्याण का कोई उचित उपाय नहीं किया। दोनों राजा इस प्रकार खेद करने लगे। तब मुनि उनसे कहने लगे कि इस प्रकार खेद करने से कोई लाभ न होगा, जितनी आयु शेष है उसमें तुम लोग आत्मा का कल्याण, व्रत स्वीकार करके भली प्रकार कर सकते हो। यह सुन कर दोनों ही राजा, अपनी अपनी राजधानी में आये और अपना अपना राज्य अपने अपने पुत्र को सौंप कर, अमिततेज और श्रीविजय ने अभिनन्दन मुनि के पास चारित्र ग्रहण किया।

चारित्र लेकर दोनों ने पादोपगमन संथारा (अनशन) आरम्भ कर दिया। अनशन काल में, श्रीविजय को अपने पिता त्रिपृष्ठ वासुदेव की ऋद्धि का स्मरण हुआ, इस कारण श्रीविजय ने अपने तप के फल स्वरूप, वैसी ही ऋद्धि मिलने की इच्छा की। अमिततेज ने, ऐसी कोई इच्छा नहीं की। अन्त में दोनों ने समाधिपूर्वक शरीर त्याग किया और प्राणत कल्प में, सुस्थितावर्त्त और नन्दितावर्त्त विमानों के स्वामी मणिचूल और दिव्यचूल नाम के देव हुए। वहाँ दोनों ने, बीस सागरोपम तक दिव्य-सुखों को भोगा।

इसी जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र को सुशोभित करने वाली रमणीय विजय में, शुभा नाम की नगरी है। वहाँ स्तिमित-सागर नाम के राजा राज्य करते थे। उनके अन्तःपुर में अन-

अनन्तवीर्य नाम दिया ।

अनन्तवीर्य, युवक हुए । संसार से उपरति होने के कारण, महाराजा स्तिमितसागर ने, अपराजित कुमार की सम्मति से राज्य का भार अनन्तवीर्य को सौंप दिया और स्वयं ने दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण किया । राज्य करते हुए महाराजा अनन्तवीर्य की मैत्री, एक विद्याधर से हो गई । उस विद्याधर ने महाराजा अनन्तवीर्य को एक महाविद्या बताई और उसका साधन करने की विधि भी बताई । महाविद्या तथा उसे साधने की विधि बता कर, विद्याधर चला गया ।

अनन्तवीर्य के यहाँ, बर्बरी और किराती नाम की दो दासियाँ थीं । ये दोनों दासियाँ नाट्यगानकला में कुशल थीं । नारद द्वारा इन दासियों की प्रशंसा सुनकर, दमितारि प्रतिवासुदेव ने अनन्तवीर्य के यहाँ अपना दूत भेजकर दोनों दासियें भेजने के लिए आज्ञा की । वासुदेव अनन्तवीर्य ने दमितारि के दूत को तो यह कहकर विदा कर दिया, कि मैं विचार कर दोनों दासियों को भेज दूँगा, लेकिन हृदय में दमितारि के प्रति बहुत क्रोध हुआ । वासुदेव अनन्तवीर्य, इस विषय में अपराजित बलदेव से गुप्त रूप से मन्त्रणा करने लगे । विचार करते हुए वासुदेव ने बलदेव से कहा, कि आकाशगामिनी विद्या सिद्ध कर लेने के कारण ही दमितारि अपने पर शासन करता है; अतः अपने को अवश्य विद्या-

विचार किया, कि दमतारि कैसा है, यह देखना चाहिए। इस प्रकार विचार कर दोनों भाई, विद्या की सहायता से दासियों का रूप बनाकर, दूत के पास गये और दमतारि से कहने लगे कि अनन्तवीर्य महाराज ने हमें आपके पास दमतारि के पास ले जाने के लिए भेजा है। दूत, बहुत प्रसन्न हुआ और दोनों को लेकर दमतारि के पास आया। उसने, दमतारि से कहा कि आपकी आज्ञानुसार, दोनों दासियाँ हाजिर हैं।

दमतारि ने, दासी-वेश धारी अनन्तवीर्य और अपराजित को, नाट्यगान करने की आज्ञा दी। दोनों भाई, समस्त कलाओं में कुशल ही थे। दोनों ने, नाट्यगानकला का खूब प्रदर्शन किया। दमतारि ने प्रसन्न होकर दोनों कृत्रिम दासियों को अपनी बड़ी पुत्री कनकश्री के पास—उसे नाट्यगानकला सिखाने के लिए भेज दिया।

दासी वेशधारी अपराजित और अनन्तवीर्य ने, थोड़े ही समय में, कनकश्री को नाट्यगानकला सिखा दी। शिक्षा देते समय अपराजित, बारंबार अनन्तवीर्य के रूप गुण और शौर्य की प्रशंसा करते थे। एक दिन, कनकश्री ने दासीवेशधारी अपराजित से पूछा, कि तुम बारम्बार जिसका गुणगान किया करती हो, वह पुरुष कौन है? दासीवेशधारी अपराजित ने कनकश्री को अनन्तवीर्य का प्रशंसापूर्ण परिचय सुनाया। अनन्तवीर्य की

इनके जितने गुण कहे थे, ये उनसे अधिक गुणवाले हैं, यह बात तू इनको देखकर सहज ही जान सकती है।

अनन्तवीर्य को देखकर, कनकश्री बहुत ही विस्मित लज्जित एवं आनन्दित हुई। अपराजित को अपने श्वसुर तुल्य मान कनकश्री, उत्तरीय वस्त्र द्वारा लज्जा करके खड़ी रही। कुछ देर पश्चात् मान और लज्जा का त्याग कनकश्री, अनन्तवीर्य से प्रार्थना करने लगी, कि सहसा आपका दर्शन मेरे लिए असम्भव था, परन्तु भाग्य की अनुकूलता से सम्भव हो गया। अब आप जिस प्रकार मेरे नाट्याचार्य बने थे, उसी प्रकार पति बनकर मुझे अपनी शरण में स्थान दीजिये; अर्थात् मेरा पाणिग्रहण कीजिये। कनकश्री की प्रार्थना के उत्तर में, अनन्तवीर्य ने कहा कि—हे शुभे, यदि तेरी इच्छा यही है, तो मेरी नगरी को चल। कनकश्री कहने लगी—नाथ, यद्यपि मेरे प्राणों पर आप ही का राज्य है, मैं तो आपकी दासी हूँ और आपकी आज्ञा मानना मेरा कर्त्तव्य है, परन्तु मेरा पिता विद्या के बल से दुर्द्धर बना हुआ है और दुष्टस्वभाववाला है, अतः सम्भव है कि वह आपके लिए कोई अनर्थ कर डाले, मुझे यही भय है। वैसे तो आप बलवान हैं, लेकिन इस समय अकेले एवं शस्त्रास्त्र रहित हैं। वासुदेव ने उत्तर दिया—हे कान्ते, तुम्हें किसी भी प्रकार के भय से भीत होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पिता, मेरा कुछ नहीं

आयु के निकट वन, अनन्तवीर्य का जीव, वैताढ्य पर, मेघनाद नाम से विद्याधरों का बुद्धिमान राजा हुआ। समय, मेघनाद, कैलाश पर्वत पर आये। वहाँ, मुनि के द करने को अच्युतेन्द्र भी पधारे थे। अच्युतेन्द्र ने, मेघनाद प्रतिबोध दिया, जिससे मेघनाद ने दीक्षा ग्रहण की और तीर्थंकर तप तप करने के पश्चात् अनशन द्वारा शरीर त्याग, बारहवें क के सामानिक देव पद प्राप्त किया।

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह में, सीता महानदी के उत् पर, रत्नावती विजय है। वहाँ, रत्नसंचया नाम की नगरी है। और क्षेमंकर नाम के राजा राज्य करते थे, जिनकी रानी का नाम रत्नमाला था।

अपराजित बलदेव का जीव, बारहवें देवलोक के अच्युतेन्द्र का आयुष्य क्षय कर, रत्नमाला के गर्भ से आया। रत्नमाला ने, र्थंकर के स्वप्न आये थे, चौदह स्वप्न देखे और पन्द्रहवें स्व वज्र का देखा। रत्नमाला जागृत हुई। उन्होंने, यह सब अपने पति को सुनाये। महाराजा क्षेमंकर ने कहा कि आपके गर्भ को होंगे हुए, तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा।

गर्भकाल को सम्पूर्ण कर, महारानी रत्नमाला ने, पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्मोत्सव करके महाराजा क्षेमंकर ने, पुत्र का नाम वज्रायुध रखा। क्रमशः बड़ा होने पर

पदेश श्रवण करके चक्रवर्ती ने भगवान से यह प्रार्थना की, कि– प्रभो, मैं कुमार सहस्रायुध को राज्य सौंप कर पुनः आपकी वा में उपस्थित होऊँ, तब तक आप यहीं विराजे रहने की कृपा रिये। भगवान से यह प्रार्थना करके, वज्रायुध चक्रवर्ती नगरी आये। वहाँ, उन्होंने, सहस्रायुध को राज्याभिषेक किया। रचात् भगवान की सेवा में उपस्थित होकर चार हजार राजाओं चार हजार अपनी रानियों और सात सौ अपने पुत्रों सहित ज्रायुध चक्रवर्ती ने संयम स्वीकार किया।

वज्रायुध मुनि, अनेक प्रकार के तप करते हुए, सिद्ध पर्वत र आये। वहाँ वे, वार्षिकी—प्रतिमा धारण करके रहे। उस समय अश्वग्रीव राजा के दो पुत्र–जो भवभ्रमण करते हुए असुर-कुमार देव हुए थे,वे–उधर आ निकले। वज्रायुध मुनि को देख कर, उन्हें वज्रायुध मुनि के प्रति अमिततेज के भव का वैर हो आया। वे, उपद्रव करने लगे और अनेक प्रकार के रूप बनाकर वज्रायुध मुनि को उपसर्ग देने लगे। इतने ही में, रम्भा तिलो-त्तमा आदि इन्द्र की अप्सराएँ, अर्हन्त प्रभु को वन्दन करने के लिए जाती हुई उधर से निकलीं। देवों द्वारा वज्रायुध मुनि को उपसर्ग होता देख कर, उन्होंने उन देवों से कहा, कि—अरे पापात्माओ! तुम यह क्या दुष्कर्म कर रहे हो! अप्सराओं के यह कहते ही, वे देव भाग गये। अप्सराएँ, आगे गईं और

रथ की सेवा में उपस्थित हुए और मेघरथ से प्रार्थना करने लगे, कि हम संसार की अनेक योनियों में भ्रमण करते थे, परन्तु आपकी कृपा से हम इस उत्तम देवयोनि को प्राप्त कर सके हैं। अब आप हम पर प्रसन्न होइये और यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी आप हमारे विमान में बैठकर मनुष्यलोक का अवलोकन कीजिये।

उभय देव की प्रार्थना स्वीकार करके सपरिवार कुमार मेघरथ, विमान में सवार हुए। विमान में बैठकर कुमार मेघरथ ने अपने परिवार सहित मनुष्य लोक (ढाई द्वीप) की प्रदक्षिणा की और फिर अपनी नगरी को लौट आये।

लोकान्तिक देवों की प्रार्थना से महाराजा घनरथ ने राजपाट कुमार मेघरथ को सौंप दिया तथा कुमार दृढ़रथ को उनका युवराज बना दिया और आप दीक्षा लेने के लिए वार्षिकदान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर महाराजा घनरथ ने संयम स्वीकार किया तथा कर्म खपा कर मोक्ष प्राप्त किया।

महाराजा मेघरथ, राज्य करने लगे। एक दिन वे राजसभा में बैठे थे, इतने ही में एक भय कम्पित कबूतर, महाराजा मेघरथ की गोद में आपड़ा और करुणस्वर में त्राहि-त्राहि पुकारने लगा। महाराजा मेघरथ ने, आश्वासन देकर कबूतर को निर्भय किया कबूतर निर्भय होकर महाराजा मेघरथ की गोद में बैठा था,

[illegible] करने आया। मार्ग में, मैंने इन पक्षियों [illegible] उनके [illegible] करके यह सब किया। [illegible] कि इशानन्द ने आपकी जो प्रशंसा [illegible] श्रात्रधर्म का पालन [illegible] है इस प्रकार महाराजा सगर की [illegible] करके वह [illegible] में गया।

[illegible] उनके सन्ता आदि पूछने [illegible] कौन थे और [illegible] हुआ [illegible] कौन था? [illegible] की [illegible] कि [illegible] जम्बुद्वीप के [illegible] पुत्र, [illegible] आई [illegible] और इस [illegible] इस [illegible] है [illegible] कहने [illegible] [illegible] और मैं गुणानन्द [illegible] [illegible] की [illegible] के लिए इस [illegible]

ी चमरेन्द्र का युद्ध हुआ था और इसमें, चमरेन्द्र की पराजय हुआ। चमरेन्द्र, मद-अहंकार चूर्ण हुआ एवं लज्जित हुआ था। बातों, यह सहन किये, इससे यह बैर हुआ। पूर्व-भव के इसी बैर के कारण, इस ईशानेन्द्र द्वारा की गई मेरी अवहेलना, अवगत हुई थी।

अपने पूर्व भव की कथा सुनकर राम और अशोक को जातिस्मृति ज्ञान हुआ। वे, मेघरथ से कहने लगे—हे महाराज, कोअवा हम मनुष्य भव को हार हो थे, लेकिन इस भव में भी हम व्यर्थ जाने की ही गलती कर रहे थे। आपही ने हमें नरक से बचाया है। अब हमें हमारे कल्याण का मार्ग बतलाइए। महाराजा मेघरथ ने, अवधिज्ञान द्वारा अवसर जानकर, दोनों को अनशन करने की आज्ञा दी। अनशन द्वारा शरीर त्याग, दोनों यहाँ, देव भव को प्राप्त हुए।

एक समय महाराजा मेघरथ, अट्ठम तप करके पौषधशाला में, कायोत्सर्ग किये बैठे थे। उसी समय, अपने अन्तःपुर में बैठे हुए ईशानेन्द्र महाराज ने, 'नमो भगवते तुभ्यं' कह कर नमस्कार किया। यह देख कर इन्द्राणियों ने ईशानेन्द्र से पूछा—महाराज, आप स्वयं ज्ञान के स्वरूप हैं, फिर आपने अतिभक्ति से किसको नमन किया? ईशानेन्द्र महाराज ने उत्तर दिया—हे देवियो, जम्बू द्वीप की पुष्कलावती विजय के अन्तर्गत पुण्डरी-

पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे। महाराजा मेघरथ उन्हें वन्दन करने गये। भगवान की वाणी सुनकर महाराजा मेघरथ ने भगवान से प्रार्थना की, कि—हे प्रभो, कृपा करके आप यहीं विराजे रहिये, मैं राज्य का प्रबन्ध करके आपके समीप दीक्षा लेने के लिए उपस्थित होता हूँ। भगवान से यह प्रार्थना करके महाराजा मेघरथ, नगरी में वापस आये और अपने भाई दृढ़रथ युवराज को राज-भार सौंपने लगे। दृढ़रथ युवराज ने, हाथ जोड़ कर महाराजा मेघरथ से प्रार्थना की, कि—हे पूज्य भ्राता, आज तक तो आपने मुझे अपने से दूर नहीं किया, फिर अब आत्म-कल्याण के समय आप मुझे दूर क्यों करते हैं ? आप, मुझे अपने से दूर न करिये, मैं भी आपके साथ चारित्र ग्रहण करूँगा। अन्त में, कुमार मेघसेन को राज भार सौंप कर, मेघरथ और दृढ़रथ ने, अन्य सात सौ राजकुमारों और चार सहस्र राजाओं के साथ संयम स्वीकार किया।

मेघरथ मुनि ने, ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त किया तथा सिंहनिक्रीड़ित आदि तप एवं बीस बोलों में से कई बोल की आराधना करके तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन किया। अन्त समय में, दृढ़रथ मुनि सहित पण्डित मरण से शरीर त्यागा और सर्वार्थ सिद्ध विमान में, तैंतीस सागर की स्थितिवाले देव हुए और दोनों, दिव्य सुख भोगने लगे।

दिनों, कुरुदेश में महामारी रोग का बड़ा उपद्रव था। प्रजा में, हाहाकार मचा हुआ था। शान्ति के लिए अनेक प्रयत्न किये गये, परन्तु शान्ति न हुई। तब गर्भवती महारानी अचिरा ने, महल की छत पर चढ़कर, चारों ओर दृष्टिपात किया। महारानी अचिरा की दृष्टि जिस ओर भी पड़ी, गर्भ के प्रताप से, उस ओर उपद्रव शान्त हो गया। इस प्रकार सारे देश में शान्ति हुई और लोग कष्टमुक्त हुए।

गर्भकाल समाप्त होने पर, ज्येष्ठ कृष्णा १३ की रात को—चन्द्र ने भरिणी नक्षत्र के साथ योग जोड़ा उस समय—जिस प्रकार पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार महारानी अचिरा ने, मृग के चिन्ह वाले, स्वर्णवर्णी, और एक सहस्र आठ लाख लक्षणों के धारक अनुपम पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही, क्षण भर के लिए त्रिलोक में उद्योत हुआ और नारकीय जीवों को भी शान्ति हुई। इन्द्र, देव और दिक् कुमारियों ने भगवान का जन्मकल्याण मनाया और भगवान को पुनः माता के पास लाकर, छत के चंदवे पर पुष्पों का गुच्छा, वस्त्र और कुण्डल जोड़ी रख, सब देव नन्दीश्वर द्वीप को गये। वहाँ अष्टान्हिका महोत्सव मना, सब देव, अपने-अपने स्थान को गये।

महाराजा विश्वसेन ने, पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, भगवान

ग्र हो मोक्ष पधारे।

भगवान कुन्थुनाथ पौने चौवीस हजार वर्ष तक कुमार पद र रहे। पौने चौवीस हजार वर्ष, माण्डलिक राजा रहे। पौने चौवीस हजार वर्ष, चक्रवर्ती पद का उपभोग किया। सोलह वर्ष छद्मस्थावस्था में विचरे और शेष आयु, केवली पर्याय में व्यतीत की। इसप्रकार भगवान कुन्थुनाथ सब पच्चान्वे हजार वर्ष ग आयुष्य भोग कर, भगवान शान्तिनाथ के निर्वाण के अर्द्ध ल्योपम पश्चात् निर्वाण पधारे।

प्रश्न:—

१—भगवान कुन्थुनाथ, पूर्व भव में कौन थे? कहाँ रहते थे? और क्या करके तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा था।

२—भगवान कुन्थुनाथ के माता-पिता और जन्मस्थान का नाम क्या है?

३—भगवान कुन्थुनाथ का चक्रवर्ती पद का अभिषेक कितनी अवस्था में हुआ था?

४—तीर्थङ्कर द्वारा दिये गये दान की विशेषता क्या है?

५—भगवान कुन्थुनाथ की जन्मतिथि, दीक्षातिथि, केवल-ज्ञान प्राप्ति तिथि और निर्वाण तिथि कौनसी है?

६—भगवान कुन्थुनाथ ने कितनी आयु किस-किस अवस्था में व्यतीत की ?

७—भगवान कुन्थुनाथ द्वारा स्थापित तीर्थ की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी ?

८—भगवान कुन्थुनाथ और भगवान धर्मनाथ के निर्वाण कितने काल का अन्तर रहा ?

(१८)

भगवान श्री अरहनाथ।

पूर्व भव।

श्लोकः —

पीठे पदोर्लुठति यस्य सुरालिरम्र,
सेवे सुदर्शन धरेऽशमनं तवाऽऽयम्।
त्वं खण्ड यन्न भरतं परितोपयन्तं,
सेवे सुदर्शन धरेश मनन्तवामम्॥

सर्वार्थसिद्ध विमान का आयुष्य भोग कर, धनपति राजा
ा जीव फाल्गुन शुद्ध ८ की रात में—जब चन्द्र का रेवती नक्षत्र
ः साथ योग था—महारानी श्रीदेवी के उदर में आया।
पुष्पशैया पर शयन किये हुई महारानी श्रीदेवी ने, तीर्थङ्कर के
ाभिसूचक चौदह महास्वप्न देखे। महारानी श्रीदेवी नींद से जाग
ठीं। इन्होंने महाराजा सुदर्शन को स्वप्न सुनाये, जिन्हें सुन कर,
इन्होंने महारानी से यह कहा कि तुम्हारे त्रिलोकपूज्य उत्कृष्ट
पुत्र होगा। महारानी श्रीदेवी ने पति के वचन पर विश्वास करके
तथास्तु कहा और गर्भ का पालन करने लगीं।

गर्भ काल समाप्त होने पर, महारानी श्रीदेवी ने, सर्व लक्षण
व्यंजन युक्त नन्दावर्त स्वस्तिका के चिन्ह वाले स्वर्णवर्णी पुत्र को जन्म
दिया। भगवान का जन्म होते ही क्षण भर के लिए तीनों लोक
में प्रकाश हो गया और नैरयिकों को भी शान्ति मिली।

छप्पन दिक्कुमारियों ने, आसनकम्प से भगवान का जन्म
हुआ जाना। ये छप्पन दिक्कुमारियाँ,आठ-आठ, चारों दिशा में,
चार-चार, चारों विदिशा में;चार उर्ध्वलोक में और चार अध लोक
में बसती हैं। भगवान जन्मे हैं, यह जान कर छप्पन दिक्कुमा-
रियाँ, अपने चार हजार सामानिक देव, सोलह हजार आत्म-
रक्षक देव, बीस हजार तीनों परिषद के देव, और चार महत्तरिका,
सात महत्तरिका आदि परिवार सहित, विमान में बैठ कर, भग-

देश पर आधिपत्य किया। एक दिन भगवान सिंहासन पर बैठे थे, इतने ही में लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि प्रभो, तीर्थ प्रवर्ताइये। भगवान ने, तदनुसार राज्य-पाट अपने पुत्र अरविन्द को सौंप दिया और आप वर्षीदान देने लगे। वर्षीदान समाप्त होने पर, दीक्षाभिषेक के पश्चात् वस्त्रालंकार धारणकर भगवान, वैजयन्ती शिबिका में विराजे और देव तथा मनुष्यों द्वारा होने वाले जयजयकार के मध्य, सहस्राम्र वन में पधारे। वहाँ, शिबिका एवं वस्त्रालंकार त्याग भगवान ने राजपरिवार के एक सहस्र पुरुषों सहित मार्गशीर्ष सुदी 11 को दिन के पिछले पहर में, छट्ठ के तप से संयम स्वीकार किया। उसी समय भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ।

दूसरे दिन, राजपुर के अपराजित राजा के यहाँ भगवान का परमान्न से पारणा हुआ। देवताओं ने, दान की महिमा करने के लिए पाँच दिव्य प्रकट किये।

अप्रतिबंध विहार करते हुए भगवान, तीन वर्ष पश्चात् पुनः हस्तिनापुर के सहस्राम्र वन में पधारे। वहाँ भगवान, आम्र-वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण करके खड़े रहे। ध्यान की तीव्रता बढ़ने से, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो, भगवान, चार घन-घातिक कर्म क्षय कर दिये और भगवान को अनन्त केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान को केवलज्ञान होते ही, त्रिलोक में प्रकाश हुआ।

आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार भगवान अरह-नाथ चौरासी हजार वर्ष की आयु भोग कर, भगवान कुन्थुनाथ के निर्वाण को एक क्रोड़ वर्ष कम पाव पल्योपम व्यतीत होने पर निर्वाण पधारे।

प्रश्न:—

१—भगवान अरहनाथ, पूर्व भव में कौन थे, कहाँ रहते थे और क्या करके तीर्थंकर गोत्र बाँधा था ?

२—भगवान अरहनाथ, किस नगर में, किस कुल में, और किस तिथि को जन्मे थे तथा इनके माता-पिता का नाम क्या था ?

३—भगवान अरहनाथ, माता के गर्भ में, कहाँ से और कितना आयुष्य भोग कर पधारे थे ?

४—चौसठ इन्द्र के भेद बताओ।

५—भगवान अरहनाथ का शरीर कितना ऊँचा था और इनके शरीर पर कौन-सा चिन्ह था ?

६—भगवान अरहनाथ से पहले कोई और तीर्थंकर ऐसे हुए थे या नहीं, जो चक्रवर्ती रहे हों ? यदि थे, तो कौन ?

७—चक्रवर्ती किसे कहते हैं ?

८—भगवान अरहनाथ को छद्मस्थ अवस्था में कितना समय लगा था और कौन से छद्मस्थ रहे थे ?

९—भगवान अरहनाथ को केवल ज्ञान किस तिथि को हुआ था और किस तिथि को भगवान का निर्वाण हुआ ?

१०—भगवान ने आयु का उपभोग किस-किस कार्य में किया संख्या सहित बताओ ?

१९

भगवान श्री मल्लिनाथ ।

पूर्व भव ।

श्लोक :—

श्री मल्लिनाथ दमय द्रुम मेघ पावः
ध्यान विंदु नविनोविन ध्याय मेघः ।
पताप्य धनु मदपापि मधौ विदुल,
ध्यान विन्दुनवेरोविन ध्याय मेघः ॥

—०—

के साथ रहेंगे। महाराजा महाबल ने, राजपाट युवराज बलभद्र को सौंप दिया। इनके छहों मित्र भी, सांसारिक बोझ से निवृत्त हो गये और सातों मित्रों ने महात्मा वरधर्म मुनि के पास दीक्षा लेली।

दीक्षा लेकर सातों मित्रों ने आपस में यह प्रतिज्ञा की, कि अपन सब समान रूप से तप करेंगे। यह प्रतिज्ञा करके सातों मुनि, चतुर्थादि अनेक प्रकार के तप करने लगे, किन्तु महाबल मुनि ने विचार किया, कि मैं इन छः से बड़ा हूँ, अतः मुझे विशेष तप करना चाहिए; अन्यथा भविष्य में सातों समान हो जावेंगे, मेरा बड़प्पन न रहेगा। इस प्रकार विचार कर महाबल मुनि पारणे के दिन, आज मेरा पेट दुखता है, आज मस्तक दुखता है आदि बहाना बनाकर पारणा न करते और तपस्या बढ़ा देते। इस प्रकार मायामिश्रित तप करने से, महाबल मुनि ने, स्त्रीवेद का बन्ध कर लिया, लेकिन अर्हद्भक्ति आदि बोलों का सेवन करने से प्रथम तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कर लिया था। सातों मुनियों ने, चौरासी हजार वर्ष तक संयम का पालन किया। अन्त में, अनशन द्वारा समाधिपूर्वक शरीर त्याग, जयन्त नाम के अनुत्तर विमान में, बत्तीस सागर की आयु वाले अहमिन्द्र देव हुए।

महाबल मुनि ने, माया सहित किये हुए तप की आलोचना

सौन्दर्य में अप्रतिम थीं।

जयन्त विमान का आयुष्य पूर्ण करके महाबल राजा का जीव, फाल्गुन शुक्ल ४ को—जब चन्द्र अश्विनी नक्षत्र में आया—महारानी प्रभावती के गर्भ में आया। सुखशैया पर शयन किये हुई महारानी प्रभावती, तीर्थंङ्कर के गर्भ सूचक चौदह महास्वप्न देख कर जाग उठीं। महारानी प्रभावती ने, पति को स्वप्न सुनाये जिन्हें सुन कर कुम्भराजा ने कहा कि तुम्हारे गर्भ से तीर्थङ्कर का जन्म होगा। महारानी प्रभावती, गर्भ का पालन-पोषण करने लगीं।

गर्भवती महारानी को, मालती पुष्प की शैया पर शयन करने की इच्छा हुई। देवों ने, महारानी—प्रभावती की इस इच्छा को पूर्ण की। गर्भकाल समाप्त होने पर, मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को—जब चन्द्र अश्विनी नक्षत्र में आया—महारानी प्रभावती ने उन्नीसवें तीर्थङ्कर को पुत्री रूप में * प्रसव किया। भगवान के शरीर पर, मुख्य चिन्ह कुम्भ कलश का था और भगवान

---

*भगवान तीर्थंकर, वैसे तो पुरुष रूप में ही अवतीर्ण होते हैं, परन्तु अपवाद स्वरूप स्त्री रूप में भी अवतीर्ण हो जाते हैं। ऐसे अपवाद को, लोकप्रवृत्ति में आश्चर्य मानते हैं। अवसर्पिणी काल में होने वाले दस आश्चर्यों में से, उन्नीसवें तीर्थंकर का स्त्रीरूप में अवतीर्ण होना भी एक आश्चर्य है। लेखक—

श्रावस्ती नगरी का रुक्मी राजा हुआ। वसु का जीव, वाराणसी नगरी का शंख राजा हुआ। वैश्रवण का जीव, हस्तिनापुर का अदीनशत्रु राजा हुआ। और अभिचन्द्र का जीव, कम्पिलपुर का जितशत्रु राजा हुआ।

इन छहों राजाओं ने किसी न किसी प्रसंग से विदेहराज कुम्भ की कन्या भगवान मल्लि के उत्कृष्ट रूप लावण्य की प्रशंसा सुनी। छहों राजाओं ने, अपने-अपने दूत कुम्भ राजा के पास भेजे और कुम्भराजा से मल्लिकुमारी की याचना कराई। इधर भगवान मल्लिनाथ ने अपने पूर्वभव के साथियों का हाल अवधिज्ञान द्वारा जान लिया कि इस समय वे कहाँ-कहाँ के राजा हैं। अपने पूर्व भव के मित्रों को प्रतिबोध देने के लिए भगवान ने, अशोक वाटिका में एक मोहनगृह बनवाया। मोहनगृह के मध्य में, एक पीठिका (चबूतरा) बनवाकर भगवान ने उसके ऊपर अपने आकार की एक प्रतिमा खड़ी की। भगवान मल्लिनाथ के आकार की यह पुतली, स्वर्णमयी थी। उसके अधर, पद्मराग मणिमय थे। नीलमणि के केश थे। स्फटिक रत्न के लोचन थे। प्रवालमयी हाथ पाँव थे। उसका उदर पोला और छिद्र सहित था। उसके तालु में भी एक छिद्र था, जिसका मुख मस्तक पर था। मस्तक का एक कमलाकार स्वर्णमयी ढक्कन था, जो मुकुट की भाँति बना हुआ था। देखने

ति बनने के योग्य नहीं हैं, तो फिर किसी पुरुष की इस कन्या से वरने की इच्छा रखना व्यर्थ है। अतः तुम मेरे दरबार से चले जाओ। इस प्रकार अपमान करके कुम्भराजा ने, छहों राजा के दूतों को अपने यहाँ से निकाल दिया। निराश और अपमानित होकर छहों दूत अपने अपने राजा के यहाँ लौट गये और कुम्भराजा का उत्तर एवं व्यवहार अपने-अपने राजा को कह सुनाया। कुम्भराजा के उत्तर और दूत के प्रति किये गये व्यवहार ने, राजाओं की क्रोधाग्नि को भड़का दिया। छहों राजाओं ने आपस में सलाह करके अपमान का बदला लेने के लिए सम्मिलित बल से कुम्भराजा पर चढ़ाई करदी। छहों राजा की सेना ने चारों ओर से मिथिला को घेर लिया। कुम्भ राजा ने, शत्रुसेना को पराजय करने के लिए युद्ध भी किया, परन्तु विजय न मिली, और मिथिला के चारों ओर पड़े हुए घेरे को नष्ट न कर सके। विवश होकर उन्हें नगर में ही बन्द रहना पड़ा।

कुम्भराजा, शत्रुसेना से किस प्रकार रक्षा हो, इसी चिन्ता में पड़े रहे थे, इतने ही में भगवान मल्लिनाथ, पिता को वन्दन करने के लिए गये। चिन्तामग्न पिता, भगवान मल्लिनाथ के प्रति कोई कृपापूर्ण व्यवहार न दर्शा सके, तब भगवान ने, अवधिज्ञान की शक्ति से सब कुछ जानते हुए भी, कुम्भ राजा

; के समीप पधारे और पुतली के मस्तक पर लगा हुआ कमलाकार सोने का ढक्कन खोल दिया। भगवान को देखकर राजा लोग यह आश्चर्य कर रहे थे कि एक ही आकृति की ये दो पुतली कैसे! इतने ही में पुतली के भीतर पड़ी हुई भोजन सामग्री से उत्पन्न घोर दुर्गन्ध ढक्कन खोलने से चारों ओर फैल गई। छहों राजा, स दुर्गन्ध से घबराये और कपड़े से नाक दबा-दबा कर, मुँह र लिया। इसी समय भगवान बोले कि—आप लोगों ने मेरी र से मुँह क्यों फेर लिया? राजाओं ने उत्तर दिया, कि दुर्गंध नाउ घबराते हैं! भगवान ने कहा—इस स्वर्णमयी पुतली केवल एक-एक ग्रास उत्तम भोजन का डाला गया, जो इस में परिणत हुआ और उसकी दुर्गंध आप से नहीं सही तो माता पिता के रजवीर्य से बने हुए औदारिक शरीर ति क्या है, इसे क्यों नहीं विचारते? जो शरीर, रूप-रस, मांस, चर्बी, अस्थि, मज्जा और वीर्य इन सात धातुओं हुआ है, जो मल का खजाना है और जिसका साथ ने से उत्तम भोज्य पदार्थ और सुगंधित द्रव्य भी मल रूप बन ते हैं, इस शरीर के केवल ऊपरी रंग को देखकर क्यों मोह ह रहे हो? अपने पूर्वभव पर ध्यान देकर, अपना कल्याण नहीं करते!

भगवान का यह उपदेश सुन कर, छहों राजाओं को जाति-

स्मृति ज्ञान हुआ और छहों राजा प्रतिबोध पाये। भगवद
छहों कमरे के द्वार खोल दिये। छहों राजा,
हाथ जोड़ भगवान से विनती करने और कहने लगे—हे
आपने हमें नरक में पड़ने से बचाकर, बड़ा
आप, पूर्वभव में भी हमारे गुरु थे और इस भव में भी
गुरु हैं। आप हमारे अपराध क्षमा करें और हमें ऐसा
बतावें कि जिससे हम कल्याण कर सकें। भगवान ने
आश्वासन दिया और उनसे कहा कि—मेरी इच्छा तो
चारित्र स्वीकार करने की है। यदि तुम्हारी भी यह इच्छा
तो अपने राज-पाट का प्रबंध करके चारित्र स्वीकार
छहों राजाओं ने, संयम लेना स्वीकार किया और
प्रबंध करने के लिए अपने-अपने नगर को लौट गये।

उसी समय लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से धर्म
प्रवर्ताने की विनती की। भगवान ने, वार्षिकदान देना प्रारम्
कर दिया। वार्षिकदान समाप्त होने पर, कुम्भ राजा और इंद्र
देवों ने, भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाया। भगवान मल्लि
जयंत शिविका में आरूढ़ हो, मिथिलापुरी के सहस्राम्र वन
पधारे। वहाँ, भगवान ने शिविका एवं वस्त्रालंकार त्याग दिये
पश्चात् मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को प्रातःकाल, छट्ठ के तप में भग
वान मल्लिनाथ ने, तीन सौ स्त्रियों और एक सहस्र राजा एवं

परिवार के पुरुषों सहित संयम स्वीकार किया। तत्काल भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान मल्लिनाथ, अशोक वृक्ष के नीचे, शुद्ध ध्यान श्रेणी पर आरूढ़ हुए। क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो, भगवान ने घनघातिक कर्मों को नष्ट कर डाला और उसी रोज अपराह्न काल में भगवान मल्लिनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

इन्द्रादि देवों, ने, केवलज्ञान-महोत्सव मनाकर, समवसरण की रचना की। बारह प्रकार की परिषद्, भगवान की वाणी सुनने को एकत्रित हुई। राजा कुम्भ और प्रतिबुद्ध आदि छः राजा, इन्हीं के पीछे बैठे। भगवान ने, कल्याणकारिणी वाणी का प्रकाश किया। प्रतिबुद्ध आदि छः राजा, भगवान के पास संयम में प्रव्रजित हुए और कुम्भ राजा ने, श्रावकपना स्वीकार किया।

दीक्षा लेने के पश्चात् भगवान मल्लिनाथ, पच्चनहज़ार नौ-सौ वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते और भव्यजीवों का कल्याण करते रहे। अपना निर्वाणकाल समीप जान कर भगवान मल्लिनाथ, पाँच सौ साध्वी और पाँचसौ साधु सहित, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहाँ भगवान ने, अनशन कर लिया। अन्त में, फाल्गुन शुक्ल १२ को एक मास के अनशन में भगवान, अघातिक कर्मों को नष्ट कर, सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

भगवान मल्लिनाथ के भिषगजी आदि अट्ठाइस गणधर थे।

राजा राज्य करता था। हरिवंश के पद्मावती नाम की रूप गुण सम्पन्ना रानी थी।

अपराजित विमान का आयुष्य भोग कर सुरश्रेष्ठ का जीव श्रावण शुक्ल पूर्णिमा की रात को—जब चन्द्र, श्रवण नक्षत्र में था—महारानी पद्मावती के गर्भ में आया। तीर्थङ्कर के गर्भ-सूचक महास्वप्न देखकर महारानी जाग उठीं। पति से स्वप्नों का फल सुनकर वे प्रसन्न हुईं और गर्भ का पोषण करने लगीं। गर्भकाल समाप्त होने पर, ज्येष्ठ कृष्ण ८ को—जब चन्द्र, श्रवण नक्षत्र में था—महारानी पद्मावती ने, कूर्म चिन्ह युक्त श्यामवर्णी पुत्र को जन्म दिया। इन्द्र, दिक्कुमारियों और देवों ने, भगवान का जन्मकल्याण मनाया।

प्रातःकाल महाराजा सुमित्र ने, पुत्र जन्मोत्सव मना कर, बालक का नाम मुनिसुव्रत रखा। तीनज्ञानधारक भगवान मुनिसुव्रत, बाल्यावस्था व्यतीत कर, युवावस्था को प्राप्त हुए। उस समय उनका सर्वाङ्ग सुन्दर बीस धनुष ऊँचा शरीर, बहुत ही शोभायमान मालूम होता था। महाराजा सुमित्र ने, कुमार मुनिसुव्रत से प्रभावती आदि अनेक राजकन्याओं का विवाह करा दिया। भगवान मुनिसुव्रत, अपनी पत्नियों के साथ आनन्दोपभोग करने लगे। भगवान मुनिसुव्रत की प्रधानपत्नी प्रभावती के गर्भ से एक पुत्र भी हुआ, जिसका नाम सुव्रत रखा गया।

प्रकार के तप और अभिग्रह करते हुए ग्यारह मास तक जनपद में विचरते रहे।

विचरते हुए भगवान, राजगृही के बाहर नीलगुहा उद्यान में पधारे। वहाँ, चम्पा वृक्ष के नीचे भगवान प्रतिमा धारण करके रहे। उस समय भगवान ने, शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से समस्त घातिक कर्मों को भस्म कर दिया, जिससे भगवान को केवल-ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त हुआ। भगवान को केवल ज्ञान होते ही, त्रिलोक में, क्षणिक प्रकाश हुआ।

आसनकम्प से, इन्द्रादि देवों ने भगवान को केवलज्ञान हुआ जाना। उन्होंने उपस्थित होकर केवलज्ञान-महोत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई, जिसमें बैठ कर बारह प्रकार की परिषद् ने भगवान मुनिसुव्रत की वाणी सुनी। भगवान की वाणी सुन कर, अनेकों ने दीक्षा ली, अनेकों ने श्रावक व्रत स्वीकार किये और अनेकों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

केवली पर्याय से भगवान मुनिसुव्रत ग्यारह मास कम साढ़े सात हजार वर्ष तक जनपद में विचरते और अनेक भव्य जीवों का कल्याण करते रहे। अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, एक सहस्र मुनियों सहित भगवान, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहाँ अनशन करके, ज्येष्ठ कृष्णा ९ को श्रवण नक्षत्र में, शैलेशी अवस्था में प्राप्त हो और चार अघातिक कर्मों का अन्त कर

६—भगवान की जन्मतिथि, दीक्षातिथि, केवलज्ञानतिथि और निर्वाणतिथि बताओ।

७—भगवान मुनिसुव्रत के निर्वाण में और भगवान शान्तिनाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा ?

—8—

२१

भगवान श्री नमीनाथ ।

पूर्व भव ।

श्लोकः —

देवेन्द्र वृन्द परिसेवित सत्व दत्त,
सत्यागमो मदनमेध महाभिरामः ।
सन्नामिनाथ रतिनाथ सुरूप रूप,
सत्यागमोऽमदनमेऽप्यमहानि लाभः ॥

इसी जम्बू द्वीप के पश्चिम महाविदेह में कौशाम्बी नाम की नगरी थी। वहाँ सिद्धार्थ नाम का परोपकारी और गुणवान [illegible] राज्य करता था। समय पाकर सिद्धार्थ राजा ने, सुदर्शन [illegible] के पास संयम ले लिया। संयम का निरतिचार पालन और [illegible] में से कितने ही बोलों की आराधना करके सिद्धार्थ ने, [illegible] नाम कर्म का उपार्जन, किया। अन्त में, समाधि-पूर्वक [illegible] त्याग, सिद्धार्थ मुनि, दसवें प्राणत देवलोक में बीस सागर [illegible] आयु वाले अपूर्व देव हुए।

अंतिम भव।

इसी जम्बू द्वीप के भरतार्द्ध में, मिथिला नाम की नगरी थी [illegible] पृथ्वी पर साक्षात् अमरावती जैसी थी। वहाँ, विजयसेन [illegible] के राजा थे, जिनकी [illegible] रानी का नाम [illegible] था।

सिद्धार्थ राजा का जीव, प्राणत देवलोक का आयुष्य [illegible] [illegible] पूर्णिमा की रात को [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] की कोख में [illegible]। [illegible]

भगवान नमीनाथ की आयु जब ढाई हजार वर्ष की हुई, तब राजा विजयसेन ने मिथिलापुरी का राज्य भगवान को सौंप । भोगफल देने वाले कर्मों की निर्जरा करते हुए भगवान नाथ, पाँच हजार वर्ष तक राज्य-सुख भोगते रहे। एक दिन ान धर्मचिन्तन में लीन थे, इतने ही में लौकान्तिक ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि हे प्रभो, अब धर्म-तीर्थ ीजिये। देवों की इस प्रार्थना पर से भगवान ने अपने पुत्र र को राज-पाट सौंप दिया और स्वयं वार्षिकदान देने लगे। वार्षिक दान की समाप्ति पर, आषाढ़ कृष्ण ९ को दिन के ले पहर में भगवान नमीनाथ ने, वप्र के वन में, एक हजार ों के साथ संयम स्वीकार किया। संयम के स्वीकृत होते भगवान को चौथा मनःपर्यव ज्ञान का ज्ञान हुआ। भगवान, ! से विहार कर गये। दूसरे दिन, एक राजा के यहाँ भगवान ारण का पारणा हुआ। दान की महिमा दर्शाने के लिए, ! ने पाँच दिव्य प्रकट किये।

भगवान नमीनाथ, छद्मस्थावस्था में नव मास तक ग्रामानु- ग्राम में विचरते रहे। विचरते और कर्मों की निर्जरा करते : भगवान, मिथिलापुरी के उसी सहस्राम्र वन में पधारे, जहाँ भगवान ने संयम स्वीकार किया था। वहाँ बोरसली वृक्ष के नीचे, बेला का तप करके भगवान, शुक्लध्यान ध्याते रहे।

पाँच हजार वर्ष तक राज्य करते रहे। नव मास छद्मस्थ-अवस्था में विचरते रहे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार दस हजार वर्ष का आयुष्य भोगकर भगवान नमीनाथ, भगवान श्री मुनिसुव्रत के निर्वाण के छः लाख वर्ष पश्चात मोक्ष पधारे।

प्रश्नः—

१—भगवान श्री नमीनाथ, पूर्व-भव में कौन थे ?

२—भगवान श्री नमीनाथ, माता के गर्भ में किस गति का कितना आयुष्य भोग कर पधारे थे ?

३—भगवान के माता-पिता और जन्मस्थान का नाम क्या था ?

४—भगवान नमीनाथ का नाम, नमीनाथ क्यों दिया गया था ?

५—भगवान नमीनाथ ने अपनी आयु किस-किस कार्य में कितनी-कितनी बिताई ?

६—भगवान नमीनाथ के तीर्थ की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी ?

७—भगवान नमीनाथ के निर्वाण में और भगवान मल्लि-नाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा था ?

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, अचलपुर नाम का नगर था। वहाँ, विक्रमधन नाम का राजा राज्य करता था, जिसकी धारिणी नामकी सुशीला रानी थी।

एक रात को धारिणी रानी ने यह स्वप्न देखा कि एक आम का फूला फला हुआ वृक्ष है, जिसके लिए एक पुरुष कहता है कि यह वृक्ष पृथक्-पृथक् स्थान पर नव बार स्थापित होगा। रानी ने, यह स्वप्न अपने पति को सुनाया। राजा विक्रमधन ने स्वप्नपाठकों से रानी के स्वप्न का फल पूछा। स्वप्नपाठकों ने कहा, कि स्वप्न के प्रभाव से रानी, एक उत्कृष्ट पुत्र को जन्म देगी, परन्तु स्वप्न का आम्र-वृक्ष, भिन्न-भिन्न स्थान पर नव बार स्थापित होगा, इसका आशय हम नहीं कह सकते, केवली भगवान ही कह सकते हैं।

समय पर रानी ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। विक्रमधन ने, पुत्र का नाम धनकुँवर रखा। जब धनकुँवर युवक हुआ, तब उसका विवाह कुसुमपुर के राजा सिंहरथ की कन्या धनकुमारी के साथ हुआ।

एक समय धनकुँवर घोड़े पर बैठ, वन-क्रीड़ार्थ उद्यान में गया। वहाँ, चतुर्ज्ञानी वसुन्धर मुनि देशना देते थे। धनकुँवर भी देशना सुनने बैठ गया। पीछे से राजा विक्रमधन आदि भी मुनि की देशना सुनने के लिए आये। देशना को

एक समय धनकुमार अपनी पत्नी धनवती के साथ जल-क्रीड़ा करने सरोवर पर गया था। वहाँ, धनवती ने देखा कि एक मुनि, मूर्छितावस्था में भूमि पर पड़े हुए हैं। धूप और परिश्रम के मारे उनका कण्ठ प्यास से सूख रहा है तथा फटे हुए पावों में से रक्त भी निकल रहा है। धनवती ने, अपने पति का ध्यान, मुनि की ओर आकर्षित किया। मुनि को देख कर धनकुमार, धनवती सहित मुनि के पास आया। दम्पति ने, शीतलोपचार से मुनि को स्वस्थ किया। मुनि ने, दम्पति को धर्मोपदेश दिया, जिसे सुन कर धनकुमार और धनवती ने, श्रावक व्रत स्वीकार किये। कुछ काल रह कर, वे मुनि अन्यत्र विहार कर गये।

समय देखकर, राजा विक्रमधन ने, अचलपुर का राज-पाट अपने पुत्र धनकुमार को सौंप दिया और स्वयं आत्म-कल्याण करने में लग गया। धनकुमार, राजा बन कर अचलपुर का राज्य करने लगा। पुण्य-योग से—जिनने धनकुमार के भावी भव बताये थे वे—वसुन्धर मुनि, विचरते-विचरते अचलपुर नगर में पधारे। रानी सहित महाराजा धन, मुनि को वन्दना करने गये। मुनि का उपदेश सुनकर दम्पति को संसार से विरक्ति हो गई। धन राजा और धनवती रानी ने, वसुन्धर मुनि से संयम स्वीकार कर लिया। धन राजा, संयम लेने के पश्चात् गुरु के साथ रह कर अनेक प्रकार के कठिन तप तपने लगे। वे, गीतार्थ

होता है इसलिए भगवान ने, आवश्यकता होने पर जरासन्ध की सेना के किसी रथ का ध्वजा, किसी सैनिक का शस्त्र और किसी सेनापति का मुकुट तो अवश्य गिराया, परन्तु एक भी मनुष्य का वध नहीं किया। पश्चात जब श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को मार डाला और उसकी सेना के राजा, राजकुमार आदि घबरा गये तब भगवान ने, समस्त भयभीत लोगों को आश्वासन देकर अभयदान दिया।

भगवान अरिष्टनेमि जब युवक हुए, तब महाराजा समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी, भगवान से विवाह करने का आग्रह करने लगे। भगवान, माता-पिता के आग्रह को टालते रहते और जब अधिक आग्रह होता, तब यह कह दिया करते कि मेरे योग्य कन्या मिलने पर मैं उससे सम्बन्ध जोड़ लूँगा। इतना कहकर वे शान्त हो जाते। उधर यशोमति रानी का जीव अपराजित विमान का आयुष्य समाप्त करके, मथुरेश महाराजा उग्रसेन की रानी धारिणी के गर्भ से कन्या रूप में उत्पन्न हुआ। उग्रसेन और धारिणी ने, कन्या का नाम राजमती रखा। राजकुमारी राजमती समय पर बड़ी हुई और अपनी सुन्दरता से सब को मोहित करने लगी।

एक समय भगवान अरिष्टनेमि, अन्य यादवकुमारों के साथ घूमते हुए, श्रीकृष्ण वासुदेव की आयुधशाला में पहुँच गये।

आयुधशाला में सुदर्शनचक्र, सारङ्ग धनुष, कौमुदकी गदा और पांचजन्य शंख आदि कृष्ण के आयुध रखे हुए थे। इन आयुधों का उपयोग, श्रीकृष्ण के सिवा और कोई नहीं कर सकता था। भगवान अरिष्टनेमि, श्रीकृष्ण के इन आयुधों को लेने लगे, तब आयुधागार—रक्षक ने, भगवान से प्रार्थना की, कि–हे प्रभो, इन आयुधों का उपयोग करना तो दूर रहा, श्रीकृष्ण के सिवा और कोई व्यक्ति इन्हें हाथ लगाकर उठाने में भी समर्थ नहीं है। इसलिए आप इन्हें उठाने का प्रयास न करें। आयुधागार-रक्षक की बात सुनकर, भगवान कुछ मुसकराये और पांचजन्य शंख उठाकर बजाने लगे। पांचजन्य की गगनभेदी ध्वनि से, द्वारका के बहुत पर्वत आदि कम्पायमान हो उठे। श्रीकृष्ण राम और दशार्हादि भी आश्चर्य करने लगे। कृष्ण विचारने लगे, कि क्या कोई चक्रवर्ती उत्पन्न हुए हैं, या इन्द्र पृथ्वी पर आये हैं, जो यह ध्वनि हुई है! इतने ही में कृष्ण को यह समाचार मिला कि आयुधागार में श्री अरिष्टनेमि कुमार ने, पांचजन्य शंख बजाया है। अन्य राजाओं सहित कृष्ण, आयुधागार में आये। वहाँ देखते हैं, कि अरिष्टनेमिकुमार, अन्य यादवकुमारों के साथ खड़े हुए हैं और शारङ्ग धनुष हाथ में लेकर उसे टंकार रहे हैं। यह देखकर श्रीकृष्ण को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने, कुमार

दशार्ह बलराम और श्रीकृष्ण वासुदेव आदि समस्त यदुवंशी, ससैन्य, बारात के रूप में धूम-धाम से भगवान अरिष्टनेमि के साथ चले।

बारात विदा हुई। इस अवर्णनीय बारात को देवता लोग भी देखने लगे। बारात को देखकर, सौधर्मेन्द्र साश्चर्य विचारने लगे कि पूर्व तीर्थंकरों के कथनानुसार, इन बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान अरिष्टनेमि को बालब्रह्मचारी रहकर दीक्षा लेनी चाहिए थी, परन्तु इस समय तो इसके विपरीत कार्य होने जा रहा है? यानी बालब्रह्मचारी रहने के बदले भगवान अरिष्टनेमि, विवाह करने जा रहे हैं! इस प्रकार आश्चर्य में पड़कर, सौधर्मेन्द्र ने अवधि-ज्ञान से देखा, तब यह जानकर उनका आश्चर्य मिटा, कि भगवान अरिष्टनेमि, बालब्रह्मचारी ही रहेंगे, यह विवाह-रचना, केवल कृष्ण की लीला है। अवधिज्ञान द्वारा इस प्रकार जान कर, सौधर्मेन्द्र, ब्राह्मण का रूप बना श्रीकृष्ण के आगे आ खड़े हुए, और सिर धुनकर श्रीकृष्ण से कहने लगे, कि आप किन ज्योतिषियों के बताये हुए लग्न में विवाह करने जा रहे हैं? आप, जिस लग्न में अरिष्टनेमि का विवाह करने जा रहे हैं, उस लग्न में अरिष्टनेमि का विवाह होना असम्भव-सा प्रतीत होता है! ब्राह्मण की बात सुन कर, श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो ब्राह्मण से कहने लगे, कि—आप यह कहने के लिए किसके आमन्त्रण पर आये

हैं आप अपने घर जाइये। श्रीकृष्ण को क्रुद्ध देखकर, ब्राह्मण-रूपधारी सौधर्मेन्द्र यह कह कर वहाँ से अदृश्य हो गये, कि 'आप अरिष्टनेमि का विवाह कैसे करते हैं, यह मैं भी देखता हूँ!'

चलते चलते बारात, मथुरा के समीप आई। चारों ओर के लोग बारात देखने के लिए दौड़ आये। राजमती की सखियाँ, राजमती से कहने लगीं—सखि, तू बहुत बड़भागिनी है, इसीसे अरिष्टनेमि से उत्तम पुरुष तेरे लिए बारात सजाकर आये हैं। सखियों की बात सुन कर राजमती बहुत हर्षित हुई। वह भी, महल के झरोखे में से बारात देखने लगी, और दूल्हा बने हुए भगवान अरिष्टनेमि को देख कर प्रसन्न होने लगी। इतने ही में राजमती का दाहिना भुजा और दाहिना आँख फड़क उठी। इस अपशकुन के होते ही राजमती की प्रसन्नता, चिन्ता में परिणत हो गई। वह अपनी सखियों से अपशकुन बता कर कहने लगी कि जिन्हें देख कर मैं प्रसन्न हो रही हूँ, और जिनके कारण तुम मुझे बड़भागिनी कह रही हो, उनके साथ विवाह होने में अवश्य ही किसी विघ्न की आशंका है। सखियाँ, राजमती को धैर्य देकर कहने लगीं कि तुम अकारण ही विघ्न की आशंका न करो, कुमार अरिष्टनेमि के साथ तुम्हारा विवाह सानन्द होगा।

रथारूढ़ भगवान अरिष्टनेमि सहित बारात, महाराजा उग्रसेन के महल के सामने आई। उसी समय भगवान अरिष्टनेमि को

पशु-पक्षियों की करुणापूर्ण चीत्कार सुनाई दी। पशु-पक्षी, अपनी भाषा में भगवान से यह कह रहे थे, कि—हे प्रभो ? हम दुखियों की रक्षा करने वाले आप ही हैं।। यद्यपि भगवान अरिष्टनेमि सब कुछ जानते थे, फिर भी उन्होंने सारथी से पूछा, कि—हे सारथी, इन सुख के अभिलाषी पशु-पक्षियों को यहां बाड़े में क्यों घेर रखा है ? और यह लोग इस प्रकार आर्तनाद क्यों कर रहे हैं ? सारथी ने उत्तर दिया, कि आपके विवाहोत्सव में जो भात की रसोई दी जावेगी, उसमें बननेवाले माँस के लिए इन पशु-पक्षियों को बाड़े पींजरे में बन्द किया गया है और मरने के भय से भीत होकर ये सब चिल्ला रहे हैं। सारथी की बात सुन कर, करुणानिधान भगवान अरिष्टनेमि ने, संसार के सामने जीवरक्षा और भय-भीत को अभयदान देने का आदर्श रखने के लिए, सारथी से कहा कि—हे सारथी, इन जीवों की हिंसा, परलोक में मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं हो सकती, अतः तुम इन दुःखी जीवों को बन्धनमुक्त कर दो।

भगवान की आज्ञा मान कर, सारथी ने, बाड़े और पींजरे में घिरे हुए समस्त पशु पक्षियों को खोल दिया। सारथी के कार्य से प्रसन्न होकर भगवान ने उसे मुकुट के सिवा अपने समस्त आभूषण पुरस्कार में दे दिये और साथ ही, रथ वापस लौटाने की आज्ञा दी। भगवान की आज्ञा से सारथी ने, रथ

भगवान अरिष्टनेमि, चप्पन दिन तक छद्मस्थ-अवस्था में रहे और आत्मध्यान में रमण करते रहे। एक दिन भगवान गिरनार पर्वत की तराई में स्थित, उसी सहस्राम्र बाग में पधारे, जिसमें भगवान ने संयम स्वीकार किया था। वहाँ अष्टम तप में, ध्यानस्थ भगवान, शुक्लध्यान में पहुँच कर, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए और फिर घातिककर्मक्षय करके, आश्विन कृष्णा अमावस्या को भगवान ने अनन्त केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया।

आसनकम्प से, भगवान को केवलज्ञान हुआ जान कर, अच्युतादि इन्द्र और असंख्य देवी देव, केवलज्ञानमहोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण समुद्रविजय आदि भी भगवान को वन्दन करने के लिए आये। समवशरण की रचना हुई, जिसमें बैठकर द्वादश प्रकार की परिषद् ने भगवान की वाणी सुनी। भगवान की वाणी सुन कर, अनेक भव्य जीव प्रति बोध पाये। राजा वरदत्त को संसार से विरक्ति हो गई। भगवान ने, राजा वरदत्त को दीक्षा देकर त्रिपदी का उपदेश किया और गणधर पद पर नियुक्त किया।

भगवान तो संयम में प्रव्रजित हो गये, परन्तु राजमती, भगवान के दर्शन की अनुरागिनी बन कर, आशा में ही दिन बिताने लगीं। इसी प्रकार जब एक वर्ष बीत गया और भगवान की ओर से राजमती की कोई खबर नहीं ली गई, तब राजमती

निर्जन एवं एकान्त में है, ऐसा समझ कर राजमती ने अपने शरीर के समस्त वस्त्र गुफा में इधर उधर फैला दिये।

राजमती, अनुपम रूपवती थीं। उनके रूप लावण्य का वर्णन करते हुए उत्तराध्ययन सूत्र में, विद्युत्प्रकाश और मणिप्रभा की उपमा दी है। राजमती के तेजोमय रूप से गुफा में प्रकाश-मय हो गया। उसी गुफा में, भगवान अरिष्टनेमि के छोटे भाई रथनेमि जी—जो भगवान के साथ ही संयम में प्रव्रजित हुए थे—ध्यान करके खड़े थे। राजमती ने, मुनि रथनेमि को नहीं देखा था, परन्तु रथनेमि ने राजमती को देख लिया। राजमती के रूप लावण्य को देख कर, रथनेमि मुनि का चित्त विचलित हो उठा। उन्होंने संयम की मर्यादा त्याग कर राजमती से भोग की याचना की। पुरुष की बोली सुनकर, और पुरुष को [illegible] देख कर राजमती, विस्मित, लज्जित एवं भयभीत हुई [illegible] शरीर को गोप कर बैठ गई और भय के [illegible] राजमती को भयभीत देखकर, रथनेमि, [illegible] राजमती को धैर्य देने लगे और कहने लगे, कि [illegible] करता नहीं है। राजमती को यह जान कर [illegible], कि यह पुरुष और कोई नहीं है, किन्तु भगवान [illegible] और मेरे देवर ही हैं। उन्होंने, रथनेमि को [illegible] उपदेश दिया, जिससे रथनेमि [illegible]

[illegible] निहार कर, राजमती, वह [illegible] उनको चिढ़ाती हुई सखियाँ [illegible] अपनी सखियों सहित भगवान की [illegible] और दीक्षा ग्रहण करके चालीस सहस्र [illegible]

भगवान अरिष्टनेमि [illegible] सौ वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते रहे। [illegible] अनेक [illegible] अनेक गणधर [illegible] अठारह सहस्र मुनि व [illegible] चालीस सहस्र साध्वियाँ थीं। एक लाख उनहत्तर हजार श्रावक थे और तीन लाख छत्तीस हजार श्राविका थीं।

अपना निर्वाण समीप जान कर भगवान अरिष्टनेमि, पाँच सौ छत्तीस मुनियों का साथ लेकर, रेवतगिरि पर, पधार गये। वहाँ भगवान ने अनशन कर लिया, जो एक महीने तक चलता रहा। अन्त में, आषाढ़ शुक्ला ८ को चित्रा नक्षत्र में संध्या समय भगवान अरिष्टनेमि, सब कर्मों का अन्त करके मोक्ष पधारे।

भगवान अरिष्टनेमि, तीन सौ वर्ष तक कुमारावस्था में रहे। चव्वन दिन, छद्मस्थ-अवस्था में विचरते रहे। शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार भगवान ने सब एक हजार वर्ष का आयुष्य भोगा और भगवान नमीनाथ के निर्वाण की पाँच लाख वर्ष बाद होने पर निर्वाण प्राप्त किया।

—०—

प्रश्न :—

१—भगवान श्री अरिष्टनेमि के कितने पूर्व-भव का वृत्तान्त जानते हो ? संक्षिप्त में बताओ ?

२—भगवान अरिष्टनेमि के माता-पिता का नाम क्या था ?

३—भगवान अरिष्टनेमि, माता शिवादेवी की कोख में किस गति से कितना आयुष्य भोग कर आये थे ?

४—भगवान अरिष्टनेमि के बाल्यकाल की कोई विशेष घटना आपको मालूम है ?

५—भगवान अरिष्टनेमि का जन्म कहाँ हुआ था, उनका बाल्यकाल कहाँ व्यतीत हुआ और फिर वे कहाँ रहे थे ?

६—द्वारका नगरी के निर्माण का क्या कारण था ?

७—भगवान अरिष्टनेमि का विवाह किसने, किस घटना को दृष्टि में रखकर और किस के साथ रचाया था ?

८—भगवान अरिष्टनेमि और सती राजमती का कितने भव से साथ था ?

९—राजमती के साथ विवाह करने के लिए भगवान बारात जोड़कर गये और फिर बिना विवाह किये ही क्यों लौट आये ?

१०—जब भगवान अरिष्टनेमि के साथ राजमती का विवाह नहीं हुआ था, तब राजमती अपना विवाह किसी दूसरे पुरुष के साथ कर सकती थी, या नहीं ? यदि कर सकती थी, तो

२३

भगवान श्री पार्श्वनाथ।

पूर्व भव।

श्लोकः—

श्री पार्श्वयक्ष पनिना परिसेव्यमान,
पार्श्वे भवानितर सादरलाज लाभे।
इन्दीवरे अलिरिव रागमना विनीले,
पार्श्वे भवानि तरसादरलाज लाभे॥

गया। इन दोनों का यह सम्बन्ध, कमठ की स्त्री वरुणा को मालूम हुआ। वरुणा ने, इस भेद को मरुभूति से प्रकट कर दिया। मरुभूति ने स्वयं भी पता लगाया, तो उसे वरुणा की कही हुई बात सत्य मालूम हुई। उसने, कमठ का यह अन्याय राजा अरविन्द के सामने कहा। राजा ने, कमठ को—पुरोहित-पुत्र होने के कारण अवध्य समझकर —नगर से बाहर निकाल दिया। कमठ, इस अपमान से बहुत दुःखी हुआ, परन्तु विवश था। वह, मन मसोस कर, तापसों के पास गया और स्वयं भी तापस बन कर, अज्ञानतप करने लगा।

कमठ के चले जाने के पश्चात् मरुभूति ने विचार किया, कि मेरे भाई कमठ ने मेरा जो अपराध किया था, उसकी अपेक्षा मैंने कमठ का अधिक अपराध किया है। क्योंकि मैंने ही राजा से फरियाद करके कमठ को नगर से बाहर निकलवाया और उसे अपमानित कराया है। मरुभूति ने, राजा से प्रार्थना की, कि कमठ का अपराध क्षमा कर दिया जावे और उसे नगर से बाहर जाने का दण्ड न दिया जावे; परन्तु राजा ने मरुभूति की यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी! तब मरुभूति, कमठ से क्षमा माँगने के लिए उसके आश्रम में गया। कमठ के चरणों में पड़ कर मरुभूति उससे क्षमा माँगने लगा, परन्तु कमठ के हृदय में जलने वाली अपमान की ज्वाला शान्त न हुई। उसने, क्रोध के वश

जिसमें तू मरुभूति श्रावक था। आर्तरौद्रध्यान से मृत्यु होने से ही तू इस भव में हाथी हुआ है। मैं भी, पूर्व भव में अरविन्द राजा था। तूने वह मनुष्य भव तो हारा ही, परन्तु अब इस भव को भी क्यों कुकृत्य में लगाता है ? इस प्रकार मुनि ने उपदेश दिया, जिसे सुनकर, यूथपति हाथी को जाति-स्मृतिज्ञान हुआ। उसने मुनि को प्रणाम करके उनसे श्रावक-धर्म स्वीकार किया। यूथपति हाथी की हथिनी भी पास ही खड़ी थी। मुनि का उपदेश सुनकर वह भी विचार करने लगी। विचार करते-करते हथिनी को भी जातिस्मृतिज्ञान हो गया और उसने भी श्रावक-धर्म स्वीकार किया। श्रावक-धर्म स्वीकार करके हाथी, छट्ठ, अट्ठम आदि तप करने लगा और यह भावना करने लगा, कि मनुष्य जन्म पाकर महाव्रत धारण करनेवाले प्राणि ही धन्य हैं, मुझे धिक्कार है, जो मैंने दीक्षा न लेकर मनुष्य जन्म को योंही खो दिया। इस प्रकार की शुभ भावना करता हुआ हाथी, काल व्यतीत करने लगा।

कमठ, अपने भाई मरुभूति को मारकर भी शान्त नहीं हुआ था। मनुष्य-वध के दुष्कृत्य को देख कर, तापसों ने भी कमठ की निन्दा की। अन्त में वह आर्तध्यान पूर्वक मर कर, कुक्कुट जाति का सर्प हुआ।

एक समय उक्त हाथी, एक सरोवर में जल पीने गया था।

संयम स्वीकार लिया और गीतार्थ हो, एकलविहारी प्रतिमा धारण करके विचरने लगा।

पाँचवें नरक का आयुष्य भोगकर कुक्कुट नाग का जीव, हिमगिरि की गुफा में सर्प योनि में उत्पन्न हुआ। वहाँ भी वह अनेक प्राणियों के प्राण हरण करता हुआ, कठिन और क्रूर कर्म उपार्जन करने लगा। किरणतेज मुनि भी, विचरते-विचरते इसी गुफा में पधारे। एकान्त स्थल देखकर मुनि, गुफा में ध्यान करके खड़े रहे। ध्यान में खड़े हुए मुनि को, उस सर्प ने देखा। पूर्वभव के वैर के कारण सर्प, क्रोधित होकर मुनि के शरीर से लिपट गया और उसने मुनि के शरीर को कई जगह डसा। मुनि ने, कर्मक्षय करने में सर्प को उपकारी माना और शुभ ध्यान करते हुए शरीर त्याग दिया। शरीर त्याग कर, किरणतेज मुनि का जीव, बारहवें देवलोक में, बाईस सागर की आयुष्यवाला उत्कृष्ट देव हुआ। वह सर्प भी, महा भयंकर कर्म बाँध कर, दावानल में दग्ध हो, अशुभ परिणामों के कारण छट्ठे तमःप्रभा नरक में बाईस सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाला नैरयिक हुआ।

इसी जम्बू द्वीप के पश्चिम महाविदेह की सुगन्ध विजय में, शुभंकरा नगरी बसी थी। वहां, वज्रवीर्य नाम का राजा राज्य करता था, जिसकी रानी का नाम लक्ष्मीवती था। किरणतेज का जीव, बारहवें कल्प का आयुष्य समाप्त करके, लक्ष्मीवती की

कोख से उत्पन्न हुआ । [illegible] ने बालक का वज्रनाभि नाम रखा। बड़ा होने पर [illegible], [illegible] कलाओं का ज्ञाता हुआ। [illegible] ने, वज्रनाभि का [illegible] अनेक राजकन्याओं के साथ कर दिया। कुछ काल [illegible] अपना राजपाट वज्रनाभि को सौंप कर [illegible] गये।

राजा वज्रनाभि के एक [illegible] नाम चक्रायुध रखा गया। बहुत काल तक [illegible] राजा वज्रनाभि की इच्छा, संयम लेकर आत्मकल्याण करने की हुई। पुण्ययोग से शुभंकरा नगरी में, क्षेमंकर नाम [illegible] भगवान [illegible] गये। भगवान क्षेमंकर का उपदेश सुन [illegible] वज्रनाभि, संयम में प्रव्रजित हो गये। थोड़े ही समय [illegible] वज्रनाभि मुनि, सूत्र सिद्धान्त के पारगामी हो गये, और अनेक प्रकार के [illegible] करते हुए विचरने लगे। उन्हें, आकाशगामिनी आदि अनेक [illegible] भी प्राप्त हुईं।

एक बार आकाशमार्ग से विहार करते हुए वज्रनाभि मुनि [illegible] विजय में पधारे। छठे नरक से निकल कर सर्प का जीव [illegible] इसी सुकच्छविजय के ज्वलनगिरि वन में कुरंगक नाम का [illegible] हुआ था। कुरंगक भील, उस जंगल में भ्रमण [illegible] द्वारा आजीविका करता था।

[illegible] उसी [illegible]

का समय हो गया था, इस कारण वज्रनाभि मुनि, ज्वलनगिरी की एक कन्दरा में ही,कायोत्सर्ग करके ध्यानारूढ़ हुए। जंगल में भ्रमण करता हुआ कुरङ्गक भील, वहाँ आनिकला, जहाँ, वज्रनाभि मुनि कायोत्सर्ग करके ध्यान में थे। पूर्वभव के वैर के प्रभाव से, मुनि को देख कर कुरंगक भील ने, अपने लिए अपशकुन समझा। उसने क्रोधित होकर मुनि के बाण मारा। बाण लगने से, मुनि पीड़ित हुए, फिर भी क्रोधरहित मुनि ने, अनशन करके शुभ ध्यान में शरीर त्यागा। शरीर त्याग कर वज्रनाभि मुनि, मध्य ग्रैवेयक में परममहर्द्धिक देव हुए। क्रूरकर्मी कुरंगक भी, समय पर, बुरे परिणामों से मृत्यु पाया और सातवें नरक के रौरव नामक नरकावास में उत्पन्न हुआ।

इसी जम्बू द्वीप के पूर्वमहाविदेह में, पुराणपुर नामक नगर था। वहाँ, कुलिशबाहु नाम का राजा राज्य करता था, जिसकी सुदर्शना नाम्नी पटरानी थी। मध्यग्रैवेयक का आयुष्य भोग कर, वज्रनाभि का जीव, महारानी सुदर्शना की कोख में आया। महारानी सुदर्शना ने, चौदह महास्वप्न देखे। पति से स्वप्नों का यह फल सुनकर कि 'तुम्हारी कोख से चक्रवर्ती या धर्मचक्री पुत्र उत्पन्न होगा' महारानी सुदर्शना प्रसन्न हुई और सावधानी-पूर्वक गर्भ का पोषण करने लगीं। समय पर रानी ने एक सुन्दर और पुण्यवान बालक को जन्म दिया। राजा कुलिशबाहु ने, पुत्रजन्मो-

पूर्व शरीर त्याग कर, दसवें कल्प के महाप्रभ विमान में, बीस सागर की स्थिति के महर्द्धिक देव हुए और सिंह भी मर कर चौथे नरक में दस सागर की स्थितिवाला नैरयिक हुआ।

— —

अन्तिम भव।

मध्य जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्रान्तर्गत मध्य खण्ड में गंगा नदी के तट पर काशी देश है, जहाँ वाराणसी नाम की एक रमणीय नगरी थी। वहाँ, इक्ष्वाकु वंश में मुकुट के समान, अश्वसेन नाम के राजा राज्य करते थे। अश्वसेन की रानियों में, वामादेवी, सब से श्रेष्ठ रानी थी, जो पटरानी भी थी। स्वर्णबाहु चक्रवर्ती का जीव, प्राणत कल्प का आयुष्य भोग कर, चैत्र कृष्णा ४ की रात को वामादेवी के गर्भ में आया। सुख-शैया पर शयन किये हुई महारानी वामादेवी ने, तीर्थंकर के गर्भ सूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों को देख कर वे जग उठीं। उन्होंने, देखे हुए स्वप्न, अपने पति-महाराज अश्वसेन-को सुनाये, और पति से स्वप्नों का फल सुनकर प्रसन्न होती हुई अपने शयनागार में जा कर, शेष रात्रि धर्म जागरण में व्यतीत की।

महारानी गर्भ का पोषण करने लगी। गर्भकाल समाप्त होने पर महारानी ने पौष कृष्णा १० की रात को—जब चन्द्र, अनुराधा नक्षत्र में आया था, तब—नीलमणि की शोभा को हरण करनेवाले, तथा सर्प के शुभ्य चिन्हवाले त्रिलोकपूज्य पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही क्षणभर के लिए त्रिलोक में प्रकाश हुआ और नारकीय जीवों को भी शांति मिली। छप्पन दिक्कुमारियों, अच्युतादि इन्द्रों और देवों ने, भगवान का जन्मकल्याण मनाया।

प्रातःकाल महाराजा अश्वसेन ने, पुत्रजन्मोत्सव मनाकर, बालक का नाम पार्श्वकुमार रखा। अनेक देवी-देव एवं मानव-मानवी से लालित-पालित भगवान पार्श्वकुमार, वृद्धि पाने लगे। भगवान, युवक हुए। उस समय उनका नव हाथ ऊँचा नीलवर्णीय शरीर, बहुत शोभायमान मालूम होता था।

कुशस्थल नगर के राजा प्रसेनजित को प्रभावती नाम्नी एक कन्या थी, जो बहुत सुन्दरी थी। जब प्रभावती, विवाह के योग्य हुई, तब उसके माता-पिता, प्रभावती के अनुरूप वर की खोज करने लगे। राजा प्रसेनजित ने बहुत तलाश की, लेकिन प्रभावती के योग्य वर का पता न लगा। एक दिन प्रभावती, अपनी सखियों के साथ बाग में टहल रही थी। वहाँ उसे किन्नरियों द्वारा गाया जाने वाला एक गीत सुनाई दिया, जिसमें

अश्वसेन-सुत पार्श्वकुमार के उत्कृष्ट रूप का वर्णन होने के साथ ही, उस स्त्री को धन्य बताया गया था, जिसे पार्श्वकुमार की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा। इस प्रकार का गीत सुन कर, प्रभावती के हृदय में, पार्श्वकुमार के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उसने निश्चय किया, कि मैं अपना विवाह, नरश्रेष्ठ पार्श्वकुमार के साथ ही करूँगी, अन्यथा अविवाहिता ही रहूँगी। प्रभावती की सखियों ने, प्रभावती का यह निश्चय, प्रभावती के माता-पिता को सुनाया। प्रभावती का निश्चय सुन कर प्रसेनजित प्रसन्न हुए और कहने लगे, कि जिस प्रकार कन्याओं में प्रभावती श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पुरुषों में पार्श्वकुमार श्रेष्ठ हैं। इन दोनों की जोड़ी योग्य है। प्रभावती का निश्चय पूर्ण करने की मैं चेष्टा करूँगा।

राजा प्रसेनजित, प्रभावती को साथ लेकर वाराणसी आये। उन्होंने, महाराज अश्वसेन को प्रभावती का निश्चय सुनाया। महाराजा अश्वसेन कहने लगे, कि पार्श्वकुमार, बाल्यकाल से ही संसार को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे, भविष्य में क्या करना चाहते हैं, इस विषय में हम कुछ नहीं जानते। चाहते तो हम भी यही हैं कि पार्श्वकुमार किसी योग्य कन्या के साथ विवाह करें, परन्तु उनके स्वभाव को देखते हमारी आशा पूर्ण होने में सन्देह है। फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा कि पार्श्वकुमार, प्रभावती

के साथ विवाह कर लें

महाराजा अश्वसेन, महाराजा प्रसेनजित और उनकी कन्या प्रभावती को साथ लेकर पार्श्वकुमार के पास गये। वे, पार्श्वकुमार से कहने लगे, कि हे पुत्र! इन महाराजा प्रसेनजित की इस प्रभावती कन्या ने, तुम्हारे साथ विवाह करने की आशा से बड़ा कष्ट उठाया है। यह तुम पर मुग्ध है और इसने तुम्हें पति रूप मान भी लिया है। अतः तुम इसके साथ अपना विवाह करो। यद्यपि भगवान पार्श्वनाथ को विवाह-बन्धन में पड़ना स्वीकार न था, फिर भी पिता का आग्रह देखकर और भोग-फल देनेवाले कर्म शेष जान कर, भगवान ने, विवाह करना स्वीकार कर लिया। परिणामतः भगवान पार्श्वकुमार का, प्रभावती के साथ विवाह हो गया और दोनों आनन्द-पूर्वक रहने लगे।

एक समय झरोखे में बैठे हुए भगवान पार्श्वकुमार, बाजार की छटा देख रहे थे। उस समय भगवान ने देखा, कि झुण्ड के झुण्ड लोग, हाथ में फल फूलादि लिये हुये नगर से बाहर की ओर जा रहे हैं। पूछने से पता लगा, कि कमठ नाम का तापस पचधुनी तापता है। वह, चारों ओर आग जला लेता है और ऊपर से सूर्य का आताप सहता है। लोग, उसी की भेंट-पूजा के लिए यह सामग्री लेकर जा रहे हैं। इतने ही में, माता वामादेवी का भेजा हुआ यह सन्देश भी भगवान के पास आया कि

मैं, कमठ तपस्वी की पूजा करने जा रही हूँ, आप भी वहीं चलें।' यद्यपि भगवान पार्श्वकुमार, इस प्रकार के तप को अज्ञान कष्ट समझते थे, फिर भी माता की आज्ञा का पालन करने, और वहाँ कोई बड़ा काम बनने वाला है, यह विचार कर, भगवान पार्श्वकुमार, गंगा तट पर वहाँ गये, जहाँ, कमठ तापस तप ले रहा था।

यह कमठ तापस वही है, जिसने सिंह के भव में स्वर्णबाहु मुनि की हत्या की थी और जो चौथे नरक में गया था। भगवान पार्श्वनाथ, जब पूर्व भव में, विश्वभूति पुरोहित के लड़के मरुभूति थे, तब यह तापस, इन्हीं का भाई था और उसी समय से वैर बाँधता आ रहा है। विश्वभूति के कमठ और मरुभूति, इन दोनों लड़कों में से कमठ तो कमठ तापस के भव में हैं और मरुभूति, पार्श्वकुमार के भव में है।

भगवान पार्श्वकुमार, गंगा तट पर सैर करते हुए कमठ तापस की धुनी के पास आये। वहाँ उन्होंने देखा, कि धुनी में जलते हुए एक लक्कड़ में बैठा हुआ एक नाग भी जल रहा है। भगवान ने, तापस से कहा कि 'जिसमें बड़े-बड़े जीवों की हिंसा होती हो, ऐसे अज्ञान तप से कोई सिद्धि नहीं मिल सकती। इस प्रकार धुनी तापने से कोई लाभ नहीं है, जिसमें कि पंचेन्द्रिय प्राणी तक की हत्या हो। देखो, इस धुनी में जलते

भगवान ने, इसी समय से वार्षिकदान देना प्रारम्भ कर दिया।

वार्षिक दान समाप्त होने पर, दीक्षाभिषेक के पश्चात भगवान पार्श्वनाथ, विशाला नाम्नी शिविका में विराजे। इन्द्र और देव देवी भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाने लगे। शिविकारूढ़ भगवान, मनुष्यों और देवों द्वारा होनेवाले जयजय-कार के मध्य वाराणसी नगरी में होते हुए, आश्रमपद नामक उद्यान में पधारे। वहाँ, सब वस्त्राभूषण उतारकर, तीन सौ राजाओं के साथ, पौष के कृष्ण पक्ष में, पौष कृष्णा ११ को—जब चन्द्र, अनुराधा नक्षत्र में था—भगवान पार्श्वकुमार ने स्वयं लोंचन किया। लोंचन करते ही, भगवान पार्श्वनाथ को मनःपर्यव नामक चौथा ज्ञान उत्पन्न हुआ।

दूसरे दिन कोपकट ग्राम के धन्य नामक गृहस्थ के यहाँ, भगवान पार्श्वनाथ का पारणा हुआ। पारणा करके भगवान, अन्यत्र विहार कर गये।

एक बार, अप्रतिबद्ध विहार करते हुए भगवान, तापसों के आश्रम के समीप पधारे। सूर्यास्त हो चुका था, इसलिए भगवान पार्श्वनाथ, वहीं कुएँ के समीप वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। [illegible] भगवान को कष्ट देने के लिए उपयुक्त अवसर [illegible]। उसने, पहले तो सिंह, चीता, हाथी और बिच्छू आदि बनाकर, भगवान को डराने की

इच्छा की पूर्ति जब इस प्रकार भी न मिली तब उसने आकाश में मेघ लाकर जल बरसाना शुरू किया। मेघ के गरजने बरसने और बिजली के कड़कने से बड़े बड़े वन भी उखड़-उखड़कर गिरने लगे। वन के पशु पक्षी इधर उधर भागने लगे। सारा वन जलमय हो गया। जल क्रमशः भगवान पार्श्वनाथ की कमर, छाती और नाक तक पहुँच गया फिर भी भगवान्, ध्यान में अविचल रहे। अनायास धरणेन्द्र का ध्यान इस ओर गया। भगवान पर यह उपसर्ग देखकर, धरणेन्द्र शीघ्र ही भगवान की सेवा में उपस्थित हुआ। भगवान को नमस्कार करके, धरणेन्द्र ने, भगवान के चरणों के नीचे स्वर्ण-कमल स्थापित किया और भगवान के मस्तक पर, अपने सप्त फणों का छत्र करके भगवान के शरीर को अपने शरीर से आच्छादित कर लिया। इस समय भगवान की शोभा कुछ और ही दिखने लगी।

धरणेन्द्र ने, इस प्रकार भगवान का उपसर्ग निवारण किया। पश्चात वह, क्रुद्ध होकर मेघमालि देव से कहने लगे। कहा - अरे दुष्ट, तू यह क्या कर रहा है? या तो शीघ्र ही अपनी माया समेट कर भगवान की शरण ले, अन्यथा मैं तेरे इस अपराध को क्षमा न करूँगा। धरणेन्द्र की बात सुनकर मेघ-माली बहुत लज्जित हुआ। अपनी माया समेट कर वह अपने मन में कहने लगा, कि मैंने इन महापुरुष को कष्ट देने के लिए

अपनी सारी शक्ति लगा दी, तब भी ये महापुरुष धीर ही बने रहे और मेरी समस्त शक्ति वृथा ही गई। इसके सिवा ये महापुरुष, अंगूठे से मेरु पर्वत को हिलाने में समर्थ हैं, फिर भी इन्होंने मेरे पर क्रोध नहीं किया। अतः अब मेरी कुशल इन महापुरुष की शरण लेने में ही है। इस प्रकार विचार कर, मेघमालि अभिमान तज भगवान के चरणों में गिर पड़ा और भगवान से क्षमा-प्रार्थना करने लगा। वीतराग भगवान पार्श्वनाथ के समीप तो धरणेन्द्र और मेघमालि, समान ही थे, अतः भगवान ने, मेघमालि को आश्वासन दिया। अन्त में, धरणेन्द्र और मेघमालि दोनों, भगवान को नमस्कार करके अपने-अपने स्थान को गये। भगवान भी, अन्यत्र विहार कर गये।

भगवान पार्श्वनाथ, छद्मस्थ-अवस्था में चौरासी दिन तक विचरते रहे। विचरते हुए भगवान वाराणसी के उसी उद्यान में पधारे, जिसमें भगवान ने संयम स्वीकार किया था। वहाँ, शुद्ध ध्यान पर आरूढ़ होने से और सर्व घातिक कर्म नष्ट हो जाने से, भगवान ने, चैत्र कृष्णा १४ के दिन केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। भगवान को केवलज्ञान होते ही, इन्द्र और देवता, भगवान का केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिए उपस्थित हुए। समव-शरण की रचना हुई। बारह प्रकार की परिषद्, भगवान की वाणी श्रवण करने के लिए एकत्रित हुई। महाराजा अश्वसेन

आदि भी भगवान को वन्दन करने आये। भगवान ने, भव्यजीवों के लिए हितकारी उपदेश दिया। भगवान का उपदेश सुन कर, बहुत से जीव प्रतिबोध पाये। महाराजा अश्वसेन, महारानी वामादेवी, तथा रानी प्रभावती आदि ने भगवान के समीप संयम स्वीकार किया।

भगवान पार्श्वनाथ के आर्यदत्त आदि दस गणधर थे। पन्द्रह हजार मुनि थे। अड़तीस हजार साध्वियाँ थीं। एकलाखचव्वन हजार श्रावक थे। और तीन लाखउन्तालीस हजार श्राविका थीं।

भगवान पार्श्वनाथ, कुछ कम सत्तर वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते रहे और अनेक भव्य जीवों का कल्याण करते रहे। अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, एक सहस्र मुनियों सहित भगवान पार्श्वनाथ ने सम्मेत शिखर पर पधार कर अनशन कर लिया जो एक मास तक चलता रहा। अन्त में, शैलेशी अवस्था को प्राप्त हो भगवान पार्श्वनाथ ने सब कर्मों का अन्त कर दिया और सिद्ध पद को प्राप्त किया।

भगवान पार्श्वनाथ, तीस वर्ष तक कुमार पद पर रहे। तीन मास से कुछ कम, छद्मस्थ-अवस्था में विचरते रहे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार एक सौ वर्ष का आयुष्य भोग कर भगवान पार्श्वनाथ, भगवान अरिष्टनेमि के निर्वाण को पौनेचौरासीहजारवर्ष बीत जाने पर निर्वाण पधारे।

—:०:—

प्रश्नः—

१—भगवान पार्श्वनाथ के माता-पिता और जन्म-स्थान का नाम क्या था ?

२—भगवान पार्श्वनाथ की पत्नी का नाम क्या था और वे किसकी कन्या थीं, तथा किस घटना के कारण किस प्रकार दोनों का सम्बन्ध जुड़ा था ?

३—भगवान पार्श्वनाथ, वामादेवी के गर्भ में किस गति से—कितना आयुष्य भोग कर—पधारे थे ?

४—भगवान पार्श्वनाथ को मेघमालि देव ने क्या उपसर्ग पहुँचाया था और किस कारण ? उपसर्ग पहुँचाने का कारण कब एवं किस भव में उत्पन्न हुआ था और वह कितने भव तक किस किस रूप में चलता रहा ?

५—भगवान पार्श्वनाथ के और कमठ तापस के बीच में कौनसी घटना घटी थी ?

६—धरणेन्द्र ने, भगवान का उपसर्ग क्यों निवारा था ? और किस प्रकार निवारा था ?

७—कमठ तापस पूर्व-भव में कौन था ?

८—भगवान की जन्मतिथि, दीक्षातिथि, और केवलज्ञान-तिथि बताओ।

(२४)

भगवान श्री महावीर ।

पूर्व भव ।

श्लोक :—

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इस जम्बू द्वीप के पश्चिममहाविदेह की महावप्र विजय में जयन्ती नाम की एक नगरी थी। वहाँ, शत्रुमर्दन नाम का राजा राज्य करता था। उसके राज्यान्तर्गत पृथ्वीप्रतिष्ठान नामक ग्राम में, नयसार नाम का एक व्यक्ति रहता था, जो राजा शत्रुमर्दन का सेवक था। नयसार स्वामिभक्त, गुणग्राहक, कोमल स्वभाववाला और पापों से दूर रहनेवाला था।

एक बार नयसार, कई गाड़े लेकर जंगल में, लकड़ी लाने गया। लकड़ी काटते-काटते मध्याह्न का समय हो गया, तब अपने साथियों सहित नयसार भोजन करने के लिए तयार हुआ। इतने ही में नयसार ने देखा, कि एक महात्मा चले आ रहे हैं, जो सूर्य के प्रचण्ड ताप और क्षुधा-तृषा से पीड़ित हैं। मुनि को देखकर नयसार, प्रसन्न हुआ। अपना अहोभाग्य मानकर नयसार ने मुनि को प्रणाम किया और मुनि से पूछा, कि आप इस गहन जंगल में कैसे पधारे हैं? मुनि ने उत्तर दिया कि मार्ग भूलने के कारण ही इस जंगल में भटक रहे हैं। नयसार ने श्रद्धा-भक्ति पूर्वक मुनि को दान दिया। मुनि ने आहार किया। पश्चात् नयसार ने, मुनि के साथ जाकर, मुनि को ठीक मार्ग में एक नगर के किनारे पहुँचा दिया। मुनि ने, नयसार को धर्मोपदेश दिया। नयसार ने मुनि से समकित स्वीकार की।

समकित स्वीकार करके नयसार, शुद्ध सम्यक्त्व पालता था, मुनियों की सेवा करने लगा। कुछ काल पश्चात् मृत्यु कर नयसार, प्रथम देवलोक में एक पल्य की स्थितिवाला देव हुआ।

जम्बू द्वीप के इसी भरतक्षेत्र में विनीता नामकी नगरी थी, जहाँ भगवान ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती राज्य करते थे। प्रथम देवलोक का आयुष्य भोगकर नयसार का जीव, भरत चक्रवर्ती के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। शरीर की चमकती हुई कान्ति के कारण, इसका नाम मरीचि रखा गया।

जब भगवान ऋषभदेव संयम में प्रव्रजित होकर धर्मोपदेश देने लगे, तब मरीचि ने भी, भगवान के पास से संयम स्वीकार लिया। मरीचि ने, ग्यारह अंग का अभ्यास भी किया, परन्तु उसे विहार की गर्मी असह्य हुई और वह परिषह को न जीत सका, अपितु परिषह से पराजित हो गया। परिषह जीतने में असमर्थ रहने के कारण, मरीचि, त्रिदण्डी (संन्यासी) हो गया। सन्यासी होने पर भी, मरीचि की श्रद्धा शुद्ध ही रही। जब उससे कोई धर्म के विषय में पूछता, तब वह वीतराग प्ररूपित साधु-धर्म ही श्रेष्ठ बतलाता और जब कोई यह पूछता, कि तुम इस धर्म को क्यों नहीं पालते हो, तब वह अपनी असमर्थता प्रकट करता। मरीचि, अपने उपदेश से प्रतिबोध पाये हुए व्यक्ति को,

भगवान ऋषभदेव के पास भेज देना। इस प्रकार करता हुआ मरीचि, भगवान ऋषभदेव के साथ ही विचरता रहता।

एक बार भरत चक्री ने भगवान ऋषभदेव से पूछा, कि—हे प्रभो, इस अवसर्पिणी काल में, इस भरतक्षेत्र में आप जैसे कितने तीर्थङ्कर होंगे? भगवान ने उत्तर दिया कि मुझ जैसे तेईस तीर्थङ्कर और होंगे, तथा तुम जैसे ग्यारह चक्रवर्ती होंगे। इसी प्रकार नवनारायण नव बलदेव, और नव प्रतिवासुदेव होंगे। यह सुनकर भरत चक्रवर्ती ने फिर प्रश्न किया कि हे प्रभो, यहाँ पर कोई व्यक्ति ऐसा है, जो अवसर्पिणी काल में होने वाले अन्य तेईस तीर्थङ्करों में तीर्थङ्कर होनेवाला हो? भगवान ऋषभदेव ने उत्तर दिया, कि तुम्हारा पुत्र मरीचि, अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थङ्करों में से महावीर अथवा वर्द्धमान नाम का अन्तिम तीर्थङ्कर होगा। यही मरीचि, त्रिपृष्ठ नाम का प्रथम वासुदेव तथा महाविदेह क्षेत्र में, प्रियमित्र नाम का चक्रवर्ती होगा।

भरत चक्रवर्ती, भगवान को वन्दन करके मरीचि त्रिदण्डी के पास आये। मरीचि को वन्दन करके भरत चक्रवर्ती उनसे कहने लगे, कि 'भगवान ऋषभदेव का आपके लिए यह कथन है, कि आप भविष्य में, इस अवसर्पिणी काल में होने वाले चौबीस तीर्थङ्करों में से अन्तिम तीर्थङ्कर होंगे और प्रथम वासुदेव होंगे तथा महाविदेह में चक्रवर्ती भी होंगे। मैं

आपको प्रणाम कर वन्दन नहीं करता हूँ, किन्तु आप भावी तीर्थंकर हैं, इसलिए आपको नमस्कार किया है।

भरत चक्रवर्ती द्वारा भगवान ऋषभदेव की भविष्यवाणी सुन कर, मरीचि जिसकी बहुत प्रसन्न हुआ। हर्षावेश से, वह नाचने लगा और कहने लगा, कि मैं, वासुदेव, चक्रवर्ती और तीर्थंकर होऊँगा! मेरे पिता, प्रथम चक्रवर्ती हैं और मेरे पितामह, प्रथम तीर्थंकर हैं! मैं भी, प्रथम वासुदेव होऊँगा! मेरा कैसा उत्तम और श्रेष्ठ धर्म करने वाला कुल है! मेरा कैसा बहुभाग्य है! इस प्रकार मदोन्मत्त होकर मरीचि, बार-बार कहने लगा। उसने, अपने मद की आलोचना भी नहीं की, इसलिए उसने नीच गोत्र का उपार्जन किया।

भगवान ऋषभदेव के निर्वाण पधारने के बाद भी, मरीचि, भगवान ऋषभदेव के साधुओं के ही साथ रहने लगा। कुछ दिन पश्चात् [illegible] के बाद मरीचि, बीमार पड़ गया। भगवान ऋषभदेव के साधुओं ने मरीचि को असंयमी समझ कर, उसकी सुश्रूषा नहीं की। तब मरीचि विचारने लगा कि आज तक जो कोई भी मेरे पास आया, मैं उसे साथ लेकर इन साधुओं के पास भेज देता [illegible], लेकिन ये साधु [illegible] मेरी [illegible] भी नहीं करते! इस प्रकार विचार करने के पश्चात् ही मरीचि की तबियत ठीक हुई कि

मरीचि के शिष्य कपिल ने भी, असुर आदि अनेक शिष्य
। अन्त में काल करके कपिल, पाँचवें स्वर्ग में गया। वहाँ,
धिज्ञान से अपना पूर्वभव जानकर कपिल ने, मोहवश अपने
भव के स्थान पर आकर अपने मत का प्रचार किया। उसी
मय से सांख्य दर्शन की प्रवृत्ति हुई।

मरीचि का जीव, ब्रह्मदेवलोक का आयुष्य भोगकर,
लाक ग्राम में ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी वह त्रिदण्डी हुआ।
श्चात् भव-भ्रमण करता हुआ, स्थूण नामक स्थान में प्रियमित्र
ाह्मण हुआ। वहाँ भी, त्रिदण्डी ही हुआ। वहाँ से काल करके,
ौधर्म कल्प में देव हुआ। सौधर्मकल्प का आयुष्य भोगकर,
चैत्य नामक स्थान में अग्न्युद्योत नामका ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी
सन्यासी बना। पश्चात् मृत्यु पाकर, ईशान्य कल्प में देव हुआ।
ईशान्य कल्प से, मन्दिर नाम के सन्निवेश में अग्निभूति ब्राह्मण
हुआ। वहाँ भी त्रिदण्डी हुआ और फिर मृत्यु पाकर सनत्कुमार
कल्प में देव हुआ। वहाँ से, ताम्बी नगरी में भारद्वाज ब्राह्मण
हुआ। वहाँ भी सन्यासी हुआ और काल करके माहेन्द्रकल्प में
देव हुआ। फिर अनेक भव भ्रमण करने के पश्चात् राजगृह
नगर में स्थावर नाम का ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी सन्यासी बना
और काल करके ब्रह्मदेवलोक में देव हुआ।ॐ

ॐ एक बार सम्यक्त्व की विराधना करने पर, अनेक भव में सन्यासी

जो महात्मा अपने शरीर की भी अपेक्षा रखते हैं, वे मुझ जैसे पतित का भला क्या ख्याल करें? और मैं उनसे ऐसी आशा भी क्या करूँ? अब तो मेरे लिए यही अच्छा है, कि साधु होने के पश्चात् मैं भी एक शिष्य बनाऊँ।

एक समय कपिल नाम का एक व्यक्ति, धर्म का अर्थी होकर मरीचि के पास आया। मरीचि ने उसे आर्हत-धर्म का उपदेश दिया। कपिल ने मरीचि से पूछा कि तुम जिस धर्म का उपदेश मुझे दे रहे हो, उस धर्म का पालन स्वयं क्यों नहीं करते! मरीचि ने, महाव्रत पालने की अपनी असमर्थता, कपिल के सामने प्रकट की। तब कपिल ने मरीचि से पूछा कि क्या तुम्हारे मार्ग में धर्म नहीं है? कपिल का प्रश्न सुनकर, मरीचि समझ गया कि यह कपिल जैन-धर्म पालने में आलसी है। मरीचि ने, कपिल को अपना शिष्य बनाने के भाव से उसके प्रश्न के उत्तर में कहा कि आर्हत-मार्ग में भी धर्म है और मेरे मार्ग में भी धर्म है। यह कह कर मरीचि ने, कपिल को अपना शिष्य बनाया। शिष्य के मोह से मरीचि ने उत्सूत्र की प्ररूपणा करके एक कोटाकोटि सागर का संसार उपार्जन किया। उसने, अपने इस कार्य की आलोचना भी नहीं की। अन्त में अनशन पूर्वक काल करके मरीचि, ब्रह्मलोक में दस सागर की स्थितिवाला देव हुआ।

मरीचि के शिष्य कपिल ने भी, आसुर आदि अनेक शिष्य किये। अन्त में काल करके कपिल, पाँचवें स्वर्ग में गया। वहाँ, अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव जानकर कपिल ने, मोहवश अपने पूर्वभव के स्थान पर आकर अपने मत का प्रचार किया। उसी समय से सांख्य दर्शन की प्रवृत्ति हुई।

मरीचि का जीव, ब्रह्मदेवलोक का आयुष्य भोगकर, कोल्लाक ग्राम में ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी वह त्रिदण्डी हुआ। पश्चात् भव-भ्रमण करता हुआ, स्थूण नामक स्थान में पियमित्र ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी, त्रिदण्डी ही हुआ। वहाँ से काल करके, सौधर्म कल्प में देव हुआ। सौधर्मकल्प का आयुष्य भोगकर, चैत्य नामक स्थान में अग्न्युद्योत नामका ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी सन्यासी बना। पश्चात् मृत्यु पाकर, ईशान्य कल्प में देव हुआ। ईशान्य कल्प से, मन्दिर नाम के सन्निवेश में अग्निभूति ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी त्रिदण्डी हुआ और फिर मृत्यु पाकर सनत्कुमार कल्प में देव हुआ। वहाँ से, श्वाम्बी नगरी में भारद्वाज ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी सन्यासी हुआ और काल करके माहेन्द्रकल्प में देव हुआ। फिर अनेक भव भ्रमण करने के पश्चात् राजगृह नगर में स्थावर नाम का ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी सन्यासी बना और काल करके ब्रह्मदेवलोक में देव हुआ।*

* एक बार सम्यक्त्व की विराधना करने पर, प्रत्येक भव में सन्यासी

निकले। कृष-शरीरी विश्वभूति मुनि, एक गाय की टक्कर से भूमि पर गिर पड़े। विशाखनन्दी ने, मुनि को पहचान लिया और मुनि का उपहास करता हुआ कहने लगा—कि रे कोठे पर के फलों को गिराने वाले! तेरा वह बल कहाँ गया! विशाखनन्दी की व्यंग पूर्ण बात विश्वभूति मुनि को असह्य हुई। उन्होंने, क्रुद्ध होकर जिस गाय की टक्कर लगी थी, उसे सींग पकड़ कर उठा लिया और चक्कर देकर फिर भूमि पर रख दिया। पश्चात् यह कामना की, कि मैं भवान्तर में तप-प्रभाव से विशाखनन्दी को मारनेवाला होऊँ। मुनि ने, इस दुष्कामना की आलोचना भी नहीं की। अन्त में बहुत काल तक तप करके वे, शरीर त्याग महाशुक्र देवलोक में उत्कृष्ट आयुष्य वाले देव हुए।

इसी जम्बू द्वीप के इसी भरत क्षेत्र में पोतनपुर नाम का एक नगर था। वहाँ, रिपुप्रतिशत्रु अथवा प्रजापति नाम का राजा राज्य करता था। रिपुप्रतिशत्रु की भद्रा नाम्नी रानी की कोख से, अचल नाम के बलदेव उत्पन्न हुए। पश्चात् रिपुप्रतिशत्रु की मृगावती नाम की दूसरी रानी की कोख से—महाशुक्र देवलोक का आयुष्य भोगकर—विश्वभूति का जीव, पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। इस पुत्र के पृष्ठ भाग में तीन पसलियाँ थीं, इसलिए बालक का नाम, त्रिपृष्ठ हुआ। अचल बलदेव और त्रिपृष्ठ वासुदेव—दोनों भाई—आनन्द से रहने लगे।

मैत को आ सुनाया। यह घटना सुनकर, अश्वग्रीव की चिन्ता और बढ़ गई।

उन्हीं दिनों विश्वभूति का भाई (विश्वभूति मुनि का उपहास करने वाला) विशाखनन्दी कुमार, भव-भ्रमण करके, तुंगगिरि की तराई में केसरी सिंह हुआ था। वह सिंह, बहुत बलवान, क्रोधी और जनता के लिये भय का कारण था। इस सिंह के भय से, तुंगगिरि के समीपस्थ शंखपुर के प्रदेश के शालि-खेत की रक्षा करना, प्रजा के लिए असम्भव हो गया था। इसलिए राजा अश्वग्रीव अपने आज्ञाकारी राजाओं को शंखपुर-प्रदेश की प्रजा की सहायता के लिए भेजा करता था।

एक बार, शंखपुर के शालि खेतों की रक्षा करनेवाले कृषकों की सहायता के लिए राजा रिपुप्रतिशत्रु के जाने का क्रम आया। राजा, रिपुप्रतिशत्रु, अपने दोनों पुत्रों को राज्य सम्हला कर, शंखपुर की ओर जाने को तयार हुए। तब त्रिपृष्ठ कुमार ने रिपुप्रतिशत्रु से कहा—पिताजी, ऐसे तुच्छ कार्य के लिए आपका जाना ठीक नहीं है, आप यहीं रहिये, हम दोनों भाई जाते हैं। राजा रिपुप्रतिशत्रु ने बहुत रोका, परन्तु त्रिपृष्ठ वासुदेव और अचल बलदेव, पिता की आज्ञा लेकर गये ही।

निश्चित स्थान पर पहुँच कर, त्रिपृष्ठ वासुदेव ने, वहाँ के लोगों से पूछा कि यहाँ रक्षा करने के लिए आने वाले राजा

[illegible] ने [illegible] किया कि शालि-क्षेत्र की [illegible] रहते हैं, जब तक कि [illegible] कहा कि इतने समय तक [illegible] सिंह बता [illegible]

[illegible] ने त्रिपृष्ठ कुमार के साथ जाकर, उन्हें वह सिंह बता दिया। त्रिपृष्ठकुमार [illegible] अस्त्र-शस्त्र [illegible] निःशस्त्र हो सिंह से युद्ध करने लगे। युद्ध करते हुए त्रिपृष्ठ कुमार ने, सिंह को [illegible] कर चीर डाला। क्रोध और दुःख के मारे सिंह, तड़फड़ाने लगा। उस समय त्रिपृष्ठ कुमार के सारथी ने सिंह से कहा कि— हे मृगराज! तू किसी साधारण मनुष्य से नहीं मारा गया है, किन्तु पुरुषोत्तम के हाथ से मारा गया है। अतः वृथा दुःख से [illegible] न अपना अपमान मान। सारथी की वाणी से सिंह को सन्तोष हुआ और वह पंचत्व को प्राप्त हुआ। देवताओं ने त्रिपृष्ठ पर पुष्पादि की वर्षा की।

अश्वग्रीव प्रति वासुदेव ने त्रिपृष्ठ द्वारा सिंह के मारे जाने का समाचार सुना। नैमित्तिक के कहे हुए अशुभ ठीक जानकर, अश्वग्रीव को बहुत दुःख हुआ। वह, त्रिपृष्ठ की ओर से सशंक रहने लगा।

वैताढ्य गिरि पर, विद्याधरों की श्रेणी में, रथनूपुर-चक्रवाल नगर था। वहाँ ज्वलनजटी नाम का विद्याधर ..

करता था। विद्याधर ज्वलनजटी की अनुपम सुन्दरी स्वयंप्रभा नामी कन्या थी। जब स्वयंप्रभा सयानी हुई, तब ज्वलनजटी विचार करने लगा, कि मैं यह कन्या-रत्न किसे दूँ ' इतने ही में एक नैमित्तिक आया। नैमित्तिक ने ज्वलनजटी से कहा, कि पोतनपुर के रिपुप्रतिशत्रु राजा का पुत्र त्रिपृष्ठ कुमार, इस कन्या के योग्य वर है। त्रिपृष्ठ कुमार, थोड़े ही समय में राजा अश्वग्रीव को मार कर त्रिखण्ड पृथ्वीपति प्रथम वासुदेव होगा और आपको वह विद्याधरों की दोनों श्रेणी का अधिपति बनावेगा। नैमित्तिक की बात मान कर, ज्वलनजटी ने, स्वयंप्रभा का विवाह, त्रिपृष्ठ के साथ कर दिया। जब यह समाचार अश्वग्रीव ने सुना, तब वह यह विचार कर ज्वलनजटी पर क्रुद्ध हुआ, कि उसने स्वयंप्रभा का विवाह, मेरे शत्रु त्रिपृष्ठ के साथ क्यों किया, मेरे साथ क्यों नहीं किया ! अश्वग्रीव ने, त्रिपृष्ठ और ज्वलनजटी के विरुद्ध युद्ध ठान दिया। अश्वग्रीव और त्रिपृष्ठ में घोर युद्ध हुआ। अन्त में, अश्वग्रीव को मारकर, त्रिपृष्ठ, तीन खण्ड पृथ्वी को साथ, प्रथम वासुदेव हुए। भरतार्द्ध के समस्त राजाओं ने, त्रिपृष्ठ वासुदेव का आधिपत्य स्वीकार किया।

त्रिपृष्ठ नारायण, तीन खण्ड पृथ्वी का उपभोग करता हुआ, सुखपूर्वक काल बिताने लगा। उस समय ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान श्रेयांसनाथ, पोतनपुर पधारे। वासुदेव त्रिपृष्ठ ने, भगवान

स समकित प्राप्त की लेकिन भोगों में बहुत अधिक मूर्छित रहने के कारण वासुदेव ने, सम्यक्त्व को भी भुला दिया। एक समय, श्रेष्ठ गायक गा रहे थे। शयन करते समय वासुदेव ने, शैया-रक्षक को यह आज्ञा दी कि जब मुझे नींद आ जावे, तब गायकों को विदा कर देना। शैया-रक्षक गायकों के गीत पर ऐसा मुग्ध हुआ, कि वह वासुदेव की आज्ञा को विस्मृत हो गया। वासुदेव जब जागे, तब गायकों का गीत सुनाई दिया। उन्होंने शय्या-रक्षक से पूछा, कि मेरी आज्ञानुसार तूने इन गायकों को विदा क्यों नहीं कर दिया ? उसने वास्तविक कारण प्रकट करके वासुदेव से क्षमा माँगी लेकिन वासुदेव उस पर बहुत क्रुद्ध हुए और उनने प्रातःकाल तपाया हुआ शीशा, उस शैया-रक्षक के कानों में डलवा दिया शैया-रक्षक मर गया। इस प्रकार त्रिपृष्ठ वासुदेव ने महा निकाचित असाता-वेदनीय कर्म उपार्जन किया। अन्त में, त्रिपृष्ठ वासुदेव उस कर्म उपार्जन करके, चौरासी लाख वर्ष का आयुष्य भोग, सातवें नरक में उत्पन्न हुए।

नयसार अथवा विश्वभूति अथवा त्रिपृष्ठ वासुदेवका जीव, सातवें नरक में कई सागर का आयुष्य भोगकर, केसरीसिंह हुआ। फिर, चौथे पंक प्रभा नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से, मनुष्य तिर्यंच के अनेक भव करके शुभ कर्मों के योग से फिर मनुष्य भव पाया और मनुष्य भव का आयुष्य भोग, संयम पाल देवलोक गया।

अपर महाविदेह की मूका नगरी में धनंजय राजा था, जिसकी धारिणी रानी थी। देवलोक का आयुष्य भोग कर विप्रप्र का जीव धारिणी रानी की कोख में आया। धारिणी रानी ने, चौदह स्वप्न देखे। समय पर धारिणी रानी ने, तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। धनंजय राजा ने, बालक का नाम प्रियमित्र रखा।

जब प्रियमित्र बड़ा हुआ, तब धनंजय ने राजपाट उसे सौंप दिया और स्वयं संयम में प्रव्रजित हो गया। प्रियमित्र, न्याय पूर्वक राज्य करने लगा। कुछ काल पश्चात्, प्रियमित्र के यहाँ चौदह महारत्न प्रकट हुए। छःखण्ड पृथ्वी को साथ प्रियमित्र, चक्रवर्ती हुआ। प्रियमित्र, बहुत काल तक चक्रवर्ती की साहबी भोगता रहा।

एक समय मूका नगरी में पोट्टिल नाम के आचार्य पधारे। चक्रवर्ती, इन्हें वन्दना करने गया। मुनि के उपदेश से वैराग्य पाकर प्रियमित्र चक्रवर्ती, अपने पुत्र को राज्य सौंप कर संयम में प्रव्रजित हो गया। ज्ञानाभ्यास एवं कोटि वर्ष तक उत्कृष्ट तप करके प्रियमित्र, अनशन द्वारा शरीर त्याग, महा शुक्र नाम के सातवें देवलोक में देव हुआ।

इसी भरत क्षेत्र में, छत्रा नगरी थी। वहाँ, जितशत्रु राजा राज्य करता था। जितशत्रु की रानी का नाम धारिणी था। महाशुक्र देवलोक में सत्रह सागर का आयुष्य भोगकर, प्रियमित्र

का जीव, धारिणी की कोख से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका नन्दन नाम रखा गया। जब कुमार नन्द बड़ा हुआ, तब जितशत्रु ने राज-पाट उसे सौंप कर संयम स्वीकार लिया।

नन्द राजा हुआ। वह, चौबीस लाख वर्षों तक सुख पूर्वक राज्य करता रहा। पश्चात् संसार से विरक्त हो, संयम में प्रव्रजित हो गया। संयम में प्रव्रजित होकर नन्द मुनि ने, एक लाख वर्ष तक मास क्षमण का तप किया। अप्रमत्तपने ज्ञान दर्शन और चारित्र की आराधना करके और उत्कृष्ट भावों से बीस बोलों का सेवन करके, प्रियमित्र ने, तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन करके, सब जीवों से क्षमा-याचना पूर्वक विशुद्ध हो, शरीर त्याग, प्राणतकल्प के महा पुष्पोत्तर विमान में, बीस सागर की उत्कृष्ट स्थितिवाला देव हुआ।

—०—

वर्तमान भव ।

इसी जम्बू द्वीप में, मनुष्यों के निवास के दस क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में से भरतक्षेत्र, सब से छोटा तो है, परन्तु है सब से अधिक रमणीय। गंगा और सिन्धु के प्रवाह के कारण भरतक्षेत्र, छः भागों में विभक्त हो गया है। इन छः भाग में से मध्य भाग

की रमणीयता, कुछ अलौकिक ही है। अर्थात् पहाड़, नदियों और वृक्षों के कारण बिहार और उड़ीसा का प्रदेश चित्ताकर्षक एवं आनन्द दायक है।

बिहार-उड़ीसा के प्रदेश में, ब्राह्मणकुण्ड एक ग्राम था। वहाँ, ऋषभदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जो वेद का पारंगत था। ऋषभदत्त ऋद्धि-सम्पन्न भी था। ऋषभदत्त की पत्नी का नाम देवानन्दा था, जो बहुत रूपवती होने के साथ ही, पति-अनुगामिनी भी थी।

प्राणत देवलोक के महापुण्डरीक पुष्पोत्तर विमान में बीस सागर की आयुष्य पूर्ण करके नन्द राजा का जीव पूर्व-कर्म अवशेष होने के कारण, आषाढ़ शुक्ला ६ की रात को हस्तोत्तरा नक्षत्र में, देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आया। सुख-पूर्वक सोती हुई देवानन्दा ने तीर्थङ्कर का जन्म सूचित करनेवाले स्वप्न—हस्ति, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, पुष्प चन्द्र, सूर्य, ध्वज, कुंभकलश, पद्म-सरोवर, क्षीर समुद्र, विमान, रत्नराशि और अग्निशिखा—को क्रमशः देखा। इन महास्वप्नों को देखकर देवानन्दा जाग उठी। पति के समीप जाकर देवानन्दा ने देखे हुए स्वप्न सुनाये। स्वप्नों को सुनकर, अपनी बुद्धि से विचार, ऋषभदत्त ने देवानन्दा से कहा कि ये स्वप्न बड़े ही उत्तम हैं। इन स्वप्नों के प्रभाव से अन्य अनेक लाभ होने के साथ ही तुम्हारी कोख से एक ऐसे पुत्ररत्न

[illegible] और विद्वानों से [illegible] स्वप्नों का यह फल सुनकर देवानन्दा बहुत प्रसन्न हुई और गर्भ का [illegible] पालन करने लगी।

देवानन्दा के गर्भ धारण किये लगभग बयासी दिन बीते, तब सौधर्म लोक के स्वामी सौधर्मेन्द्र को अवधिज्ञान द्वारा यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर, देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में हैं। वे तत्काल ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में आये। गर्भस्थ भगवान को नमस्कार करके सौधर्मेन्द्र यह विचार करने लगे कि तीर्थंकर महापुरुष उत्तम कुल में ही उत्पन्न होते हैं हीन-नीच कुल में उत्पन्न नहीं होते, फिर अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर, ब्राह्मणी के गर्भ में क्यों हैं? विचार करते हुए सौधर्मेन्द्र, इस निर्णय पर पहुँचे, कि एक तो भगवान महावीर पूर्वकृत नाम गोत्र कर्म की प्रकृतियों के कारण ब्राह्मणी के गर्भ में आये हैं, और दूसरे अनन्तकाल में दस आश्चर्यों के प्रभाव से भी ऐसा होता है। इस निर्णय पर पहुँचकर, सौधर्मेन्द्र ने अपने कर्तव्य की दृष्टि से सोचकर, भगवान को नीच कुल में न जन्मने देने और गर्भस्थ भगवान को उत्तम कुल में जन्माने का निश्चय किया। उन्होंने, तत्काल अपने सेनापति हरिनैगमेषी देव को बुलाया और उसे आज्ञा दी, कि तुम देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भस्थ अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर को क्षत्रियकुण्ड

ग्राम के राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशलादेवी के गर्भ में पहुँचाओ तथा त्रिशलादेवी के गर्भ में जो कन्या है, उसे देवानन्दा के गर्भ में पहुँचाओ और यह करके मुझे सूचना दो। इन्द्र की आज्ञानुसार कार्य करके हरिणगवेषी देव, गर्भस्थ भगवान से क्षमा प्रार्थना कर, इन्द्र के पास गया, और उनसे प्रार्थना की, कि मैंने आपकी आज्ञानुसार कार्य कर दिया है।

हरिणगवेषी देव ने, देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में रहे हुए भगवान महावीर को, आश्विन कृष्णा १३ की रात में, त्रिशलादेवी के गर्भ में पहुँचाया। उसी समय सुख-शैया पर सोई हुई महारानी त्रिशलादेवी ने तीर्थङ्कर के गर्भ सूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देखकर महारानी त्रिशिला जाग उठीं और देखे हुए स्वप्न, पति को सुनाये। स्वप्नों को सुनकर, महाराजा सिद्धार्थ ने, महारानी त्रिशलादेवी से कहा, कि तुमने बहुत अच्छे स्वप्न देखे हैं; इन स्वप्नों के प्रभाव से तुम अद्वितीय-प्रतापी पुत्र की माता बनोगी। यह सुनकर महारानी त्रिशलादेवी बहुत प्रसन्न हुईं। प्रातःकाल महाराजा सिद्धार्थ ने स्वप्न पाठकों को बुलाकर उनसे महारानी त्रिशलादेवी के देखे हुए स्वप्नों का फल पूछा। स्वप्न पाठकों ने कहा, कि स्वप्न के प्रभाव से महारानी, त्रिलोक पूज्य पुत्र को जन्म देंगी। स्वप्नों का फल सुनकर दम्पति को प्रसन्नता हुई।

न्द्र के प्रश्नों का सुयोग्यता-पूर्वक उत्तर दिया, यह देख कर, कलाचार्य को भी दंग रह जाना पड़ा। कलाचार्य विचारने लगे, कि जिन प्रश्नों का उत्तर मैं भी नहीं दे सकता, उन प्रश्नों का उत्तर देने वाले को मैं क्या पढ़ाऊँगा! इस प्रकार विचार कर, कलाचार्य ने, महाराजा सिद्धार्थ से कहा कि कुमार वर्द्धमान तो मेरे भी गुरु हैं, मैं इन्हें क्या पढ़ाऊँ! आप इन्हें लिवा जाइये! कलाचार्य की बात सुन कर, महाराजा सिद्धार्थ, महोत्सव-पूर्वक भगवान को महलों में ले आये।

भगवान महावीर के एक बड़े भाई थे जिनका नाम नन्दिवर्द्धन था। इसी प्रकार सुदर्शना नाम्नी एक बहन भी थी।

वृद्धि पाते हुए भगवान महावीर युवक हुए। उस समय उनका उत्कृष्ट रूप सम्पन्न सात हाथ ऊँचा सुडौल शरीर बहुत ही सुन्दर मालूम होता था। माता-पिता का आग्रह और भोग फल देने वाले कर्म अवशेष देख कर, भगवान महावीर ने यशोदा नाम्नी राजकन्या के साथ विवाह किया। दम्पति, सुख पूर्वक रहने लगे। कुछ समय पश्चात् यशोदा ने एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम प्रियदर्शना था और जो जामाली के साथ ब्याही गई थी।

भगवान महावीर अट्ठाइस वर्ष की अवस्था में थे, तब भगवान के माता-पिता धर्मध्यान करते हुए परलोक वासी हो गये।

भगवान के बड़े भाई नन्दिवर्द्धन माता-पिता के स्वर्गवास से बहुत दुःखी हुए, लेकिन भगवान महावीर वस्तुस्वरूप का विचार करके माता-पिता के वियोग को शान्तिपूर्वक सहन किया और और अपने भ्राता नन्दिवर्द्धन को भी उपदेश द्वारा धैर्य दिलाया।

राज-नियम के अनुसार पिता की राजगद्दी पर, बड़े भाई का ही अधिकार होता है, लेकिन महाराजा सिद्धार्थ के बड़े पुत्र नन्दिवर्द्धन ने विचार किया कि कुमार वर्द्धमान, बलवान और राज्य करने के योग्य हैं, और बलवानों का ही राज्य प्राप्त भी होता है, अतः मेरे लिए यही उचित है, कि मैं पिता के राज्यासन पर, कुमार वर्द्धमान को आरूढ़ करूँ। इस प्रकार विचार कर नन्दिवर्द्धन ने, कुमार वर्द्धमान से कहने लगे, कि—पिता का राज-भार तुम स्वीकार करो। वर्द्धमान ने, भाई को उत्तर दिया कि राज्य के अधिकारी आप हैं, अतः आप ही राज्य करिये। मैं, ऐसा राज्य नहीं लेना चाहता, जिसमें अशान्ति ही अशान्ति हो; मैं तो वह राज्य चाहता हूँ, कि जिसमें अशान्ति का चिन्ह भी न हो। अन्त में, महाराजा सिद्धार्थ के स्थान पर, नन्दिवर्द्धन राजा हुए।

दीर्घकाल से दीक्षा लेने के लिए, उत्सुक होते हुए भी, भगवान महावीर, माता-पिता को मेरे वियोग का दुःख न हो, इस दृष्टि से गृहस्थाश्रम में रहते हुए थे। माता-पिता का स्वर्गवास होने के पश्चात् भगवान ने, अपने भ्राता नन्दिवर्द्धन से—दीक्षा

लेने के लिए अनुमति माँगी। भगवान की बात सुनकर, नन्दिवर्द्धन, आँखों में आँसू भरकर, भगवान से कहने लगे, कि—अभी मैं माता-पिता के वियोग का दुःख तो विस्मृत कर ही नहीं सका हूँ फिर आप यह क्या कह रहे हैं! आप इसी समय अपने वियोग के दुःख से मुझे और दुःखी क्यों करना चाहते हैं! वैसे तो आप गृह में रहते हुए भी गृहत्यागी के ही समान हैं, लेकिन गृह त्याग कर, मुझे और दुःखी न बनाइये। इस पर भी यदि आपकी इच्छा संयम लेने की ही है, तो अभी थोड़े दिन और ठहरिये, फिर जैसा आप उचित समझें वैसा करना। भ्राता की बात मानकर भगवान, एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक गृह में ही, भाव-यति होकर रहे। पश्चात्, लोकान्तिक देवों ने उपस्थित होकर भगवान से धर्मतीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना की। भगवान ने, उसी समय से वार्षिक दान देना प्रारम्भ कर दिया। इन्द्र की आज्ञा से देवों ने, भगवान के भण्डार भर दिये और भगवान नित्यप्रति एक क्रोड़ आठ लाख सोनैये का दान देने लगे।

वार्षिक दान की समाप्ति पर, राजा नन्दिवर्द्धन ने, बड़े दुःख के साथ भगवान को दीक्षा लेने की स्वीकृति दी। राजा नन्दिवर्द्धन तथा इन्द्रादि देवों ने, भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाया। भगवान वर्द्धमान, चन्द्रप्रभा शिविका में विराज कर, क्षत्रियकुण्ड ग्राम के मध्य में होते हुए ज्ञातखण्ड उद्यान में पधारे। वहाँ,

सब आभूषण त्याग कर अट्ठ के तप में पञ्चमुष्टि लोंच करके, मार्गशीर्ष कृष्णा १० को दिन के पिछले पहर में जब चन्द्र हस्तोत्तरा नक्षत्र में आया हुआ था—भगवान ने संयम स्वीकार किया। उसी समय भगवान को मन पर्यय नामका चौथा ज्ञान उत्पन्न हुआ। राजा नन्दिवर्द्धन आदि, भगवान को वन्दन करके अपने स्थान को आये और भगवान, अन्यत्र विहार कर गये।

विहार करते हुए जब संध्या हुई, तब भगवान जंगल में ही ध्यान धर कर खड़े हो गये। इतने ही में, कुछ ग्वाले वहाँ आ गये। वे भगवान से बोले, कि हम कुछ काम करके फिर आते हैं, तब तक तुम हमारी इन गायों को सम्हाल रखना, ये कहीं चली न जावें। प्रभु महावीर ध्यान में मग्न थे। वे, यह जानते ही न थे, कि कौन क्या कह रहा है! इसके सिवा गृह-संसार-त्यागी भगवान, गायें सम्हालने के प्रपंच में भी क्यों पड़ने लगे थे! ग्वाले, भगवान से गायें सम्हालने का कह कर चले गये, लेकिन जब वापस आये, तब उन्हें गायें वहाँ न मिलीं, तितिर-बितिर होकर कहीं चली गई थीं। वे भगवान से पूछने लगे कि गायें कहाँ हैं? लेकिन भगवान ध्यान में थे, इससे उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया। तब ग्वाले, क्रुद्ध होकर कहने लगे, कि हम गायें इस धूर्त को सम्हलवागये थे, इसीने गायों को कहीं छिपाया है और अब पूछने पर बोलता भी नहीं है! उन

वालों में से एक ग्वाला, हाथ में की रस्सी का कोड़ा बनाकर उसे घुमाता हुआ और भगवान से गायों के लिए पूछता हुआ, भगवान को कोड़ा मारने के लिए तैयार हुआ। इतने ही में, इन्द्र का ध्यान, इस घटना की ओर गया। इन्द्र, तत्क्षण वहाँ उपस्थित हुए और भगवान को नमस्कार करके, ग्वालों की ओर कड़ी दृष्टि से देखते हुए, मन ही-मन कहने लगे, कि—प्रभो, आप पर इसी प्रकार के उपसर्ग आने वाले हैं, अतः आप मुझे अपने साथ रहकर सेवा करने की स्वीकृति दीजिए! मन में की हुई इन्द्र की इस प्रार्थना के उत्तर में, भगवान बोले—हे इन्द्र, तेरी बुद्धि में यह विकार कहाँ से आया! तू, मेरी भक्ति करता है, या आसातना करता है? क्या तू तीर्थङ्कर और वीतराग की सहायता देने की इच्छा रखता है! जो अपने कर्मक्षय करने के लिए निकला है, क्या वह तेरी सहायता की अपेक्षा रखेगा! तू, यह तो विचार कर, कि अनन्त बली अरिहन्त की सहायता करने के लिए तयार होना, अरिहन्त की भक्ति है, या उनका अपमान है! तू, मेरा काम मुझे ही करने दे, मेरे लिए किसी प्रकार की चिन्ता मत कर। भगवान का उत्तर सुनकर, इन्द्र को बहुत आश्चर्य हुआ। आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से भगवान की ओर, देखते हुए, भगवान को नमस्कार करके इन्द्र, अपने स्थान को, गये और जाते समय सिद्धार्थ नाम के व्यन्तर देव को, अदृश्य,

रूप में भगवान [illegible] रहने की आज्ञा दे गये। उसी समय, [illegible] हो गया जिसे देखकर [illegible] के लिए कहने [illegible] उस ग्वाला गायों से क्या [illegible] बड़ा अपराध किया है [illegible] अपना अपराध क्षमा करा कर [illegible]

दूसरे दिन [illegible] बहुलनामक ब्राह्मण के यहाँ भगवान का परमान्न से पारणा हुआ। दान की महिमा दिखाने के लिए देवों ने पाँच दिव्य प्रकट किये। भगवान वहाँ से भी विहार कर गये और अप्रतिबद्ध रूप से विचरने लगे। दीक्षा के समय, भगवान के शरीर पर देवों ने सुगन्धित द्रव्य लगाये थे। उस सुगन्ध से आकर्षित हो भ्रमरों ने, भगवान के शरीर को बहुत कष्ट दिया—यहाँ तक कि शरीर में छिद्र भी कर दिये, लेकिन भगवान, इन सब कष्टों को धैर्यपूर्वक सहते रहे उनका हृदय, किंचित भी विचलित नहीं हुआ।

प्रथम चातुर्मास में भगवान महावीर, अस्थिक ग्राम में रहे। जिस स्थान पर भगवान चातुर्मास में रहे थे, एक यक्ष, उस स्थान पर किसी मनुष्य को नहीं रहने देता था। भगवान, उस स्थान पर निर्भय होकर रहे और वहीं, कायोत्सर्ग किया। रात के समय

वह शूलपाणि यक्ष आया। उसने, भगवान महावीर को अनेक प्रकार के उपसर्ग दिये, लेकिन भगवान अविचल ही बने रहे। जब वह थक गया, तब आश्चर्य में पड़ा और फिर भगवान से क्षमा प्रार्थना करने लगा। उस समय सिद्धार्थ व्यन्तर ने, उस यक्ष को उपदेश दिया, जिससे उसने समकित प्राप्त की।

चातुर्मास की समाप्ति पर, अस्थिकग्राम से विहार करके भगवान, श्वेताम्बिका की ओर पधारे। श्वेताम्बिका की ओर जाते हुए भगवान से, मार्ग में, ग्वालों के बालकों ने प्रार्थना की, कि हे प्रभो, यह मार्ग जाता तो सीधा श्वेताम्बिका को ही है, परन्तु मार्ग में, तापसों के आश्रम के समीप, आज कल एक ऐसा सर्प रहता है, कि जिसकी दृष्टि से ही विष चढ़ता है। अतः आप इस रास्ते को छोड़ कर, अन्य मार्ग से श्वेताम्बिका पधारिये। ग्वालों के बालकों की यह प्रार्थना सुन कर भी भगवान, यह विचार कर उसी मार्ग से पधारे, कि वह सर्प, बोध पाने के योग्य है। चलते-चलते भगवान, उस सर्प की बांबी के समीप पहुँचे और बांबी के समीप ही कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। कुछ ही समय में वह दृष्टि-विषधारी सर्प बांबीसे बाहर निकला। बांबी के समीप खड़े हुए भगवान को देख कर, वह सर्प, बहुत क्रुद्ध हुआ और फन फैला कर, पशु पक्षी मनुष्य तथा वृक्षों को भस्म कर देने वाली विष भरी दृष्टि, भगवान पर बार-बार डालने

लगा। साँप की दृष्टि से निकलने वाली विष-ज्वाला, भगवान के [illegible] पर पड़-पड़ कर उसी प्रकार निष्फल हुई, जिस प्रकार [illegible] पड़ी हुई बिजली, निष्फल जाती है। अपनी विषदृष्टि [illegible] देख, साँप का क्रोध और बढ़ गया। वह, एक बार [illegible] कर और इस प्रकार अपने सिर को ऊपर बना [illegible] पर दृष्टि द्वारा विष ज्वाला छोड़ने लगा, परन्तु [illegible] सफलता न मिली। तब वह क्रोध करके भग- [illegible] और इस द्वारा पूजनीय भगवान के चरण- [illegible] अपने दाँतों से डसा। साँप के डसने से, भग- [illegible] हुई, परन्तु भगवान के शरीर के पुद्गल, विष- [illegible] इस कारण, भगवान के शरीर में, सर्प [illegible] का कोई प्रभाव न हुआ। अपितु भगवान के चरण से [illegible] जैसी उज्ज्वल दूध की धारा, वह निकली। सर्प को, वह उज्ज्वल रक्त-धारा, बहुत मीठी लगी। भगवान के चरण से निकलते हुए उज्ज्वल और मीठे रक्त को बार-बार पीकर सर्प विचारने लगा, कि यह अलौकिक पुरुष कौन है! [illegible] विचारते, उसके [illegible] कर्म क्षय होने से सर्प को [illegible] ज्ञान हुआ। ज्ञान से, वह सदय [illegible] कर, सर्प को [illegible] [illegible]

देख कर और भगवान को पहचान कर, साँप ने, नम्रता-पूर्वक भगवान को वन्दन किया और भगवान से अपना अपराध क्षमा कराया।

जिस क्रोध के कारण साँप की योनि पाई, उस क्रोध पर विजय पाने के लिए और मेरी विषदृष्टि से फिर किसी प्राणी को कष्ट न हो, इसलिए, उस साँप ने, अनशन करके, अपना मुख शरीर बाँबी से बाहर रख कर, अपना फन बिल में डाल दिया और समभाव में मग्न हो गया। साँप की अनुकम्पा के लिए, भगवान भी, बाँबी के समीप ही ठहर गये। भगवान को सुरक्षित देख कर, ग्वालों के लड़के भी बाँबी के समीप आये। भगवान को मधुर शांति और साँप को बाँबी में मुख किये वहीं पड़ा देख कर, ग्वालों को बड़ा आश्चर्य हुआ। विश्वास करने के लिए वे लड़के दूर ही की ओट से उस साँप को पत्थर और ढेले मारने लगे, परन्तु साँप निश्चल ही रहा। तब साँप के समीप आकर वे लड़के, साँप को लकड़ी के टुकड़े (डंडे) से ठेलने लगे, लेकिन साँप विचलित न हुआ। साँप की यह दशा देख कर, उन लड़कों ने सब लोगों से कहा। अनेक स्त्री-पुरुष वहाँ एकत्रित हो गये और भगवान एवं शान्तमुद्रा साँप को वन्दन करने लगे। परन्तु, ग्वालिनों ने, साँप के शरीर पर, दूध दही और घी छिड़क कर साँप की पूजा की। घी की गन्ध के कारण, कीड़

[illegible] और यहाँ से [illegible] तथा [illegible]
[illegible] सामूहिक [illegible] का [illegible]
[illegible] नाम से [illegible]
[illegible] हुआ [illegible] वहाँ [illegible] की [illegible]
[illegible] किया

[illegible] के लिए [illegible]
को [illegible] किया । [illegible] नदी के [illegible] पहुँचे,
[illegible] के साथ, [illegible] के लिए [illegible] में
हैं । [illegible] थे, किन्तु [illegible] के [illegible] में [illegible]
[illegible] था, [illegible] हुआ, [illegible]

याद हो आया। इस कारण उसने भगवान को कष्ट देने को नाव के लिए भय.वह स्थिति उत्पन्न कर दी। उस समय, कम्बल और सम्बल देवों ने आकर, भगवान का यह उपसर्ग निवारण किया और नाव को पार पहुँचा दी। यह करके उन दोनों देवों ने, भगवान को नमस्कार किया, तब नाव में बैठे हुए लोग भी, भगवान को यह कहकर वन्दन करने लगे, कि हे प्रभो, हम आपके साथ होने के कारण ही इस समय डूबने से बचे हैं।

अपने चरणों से अनेक ग्राम, नगर की भूमि को पवित्र बनाते हुए भगवान, राजगृह नगर के नालंदी नामक उपनगर में पधारे। वहाँ भगवान, एक बुनकर की बुनकर-शाला में, आज्ञा लेकर चातुर्मास रहे। वहाँ भगवान ने, मास क्षमण का तप करके कायोत्सर्ग किया। उन्हीं दिनों में, मंखली पुत्र गोशालक, अपने पिता-माता से कलह करके घर से निकल गया था और चित्रपट लेकर भिक्षा मांगता फिरता था। फिरता-फिरता, गोशालक भी राजगृह नगर में आया और उसी बुनकर शाला में-जिसमें भगवान ने मास क्षमण तप-पूर्वक कायोत्सर्ग किया था—ठहरा। मास क्षमण का तप पूर्ण होने पर भगवान, पारणा करने के लिए भिक्षा लेने को विजय सेठ के घर पधारे। विजय सेठ ने, भक्ति-पूर्वक भगवान को भोजन से प्रतिलाभित किया। देवों ने, रत्न-वृष्टि द्वारा, दान की महिमा की। यह समाचार जब

गोशालक ने सुना, तब वह भगवान के लिए विचार करने लगा, कि ये मुनि, कोई सामान्य मुनि नहीं हैं. जिसको दान देने वाले के घर रत्न-वृष्टि होती है, वह अवश्य ही कोई लोकोत्तर पुरुष है। मैं, चित्रपट को छोड़कर, इन मुनि का शिष्य होजाऊँ, यही मेरे लिए अच्छा है। गोशालक, इस प्रकार विचारता था, इतने ही मे भगवान पधार गये, और पुन कायोत्सर्ग मे स्थित हो गये। तब गोशालक, भगवान को नमस्कार करके बोला—भगवन्, मैं अब आपका शिष्य होऊँगा, मेरे लिए आपकी सेवा ही शरण है। गोशालक ने ऐसा कई बार कहा, परन्तु भगवान मौन ही रहे। तब गोशालक, स्वयं ही भगवान का शिष्य बनकर, भगवान के पास रहने लगा।

भगवान ने, दूसरे मास क्षमण का पारणा आनन्द नाम के गृहपति के यहाँ किया और तीसरे मास क्षमण का पारणा, सुनन्द नाम के गृहपति के यहाँ किया। तीसरे मास क्षमण का पारणा करके भगवान, पुनः मौन धारण कर ध्यानस्थ रहे। कार्तिकी पूर्णिमा के दिन, गोशालक ने भगवान के लिए विचार किया, कि मैं इनको महाज्ञानी सुनता हूँ, अतः आज परीक्षा करूँ। इस प्रकार विचार कर, गोशालक, भगवान से पूछने लगा, कि हे—प्रभो, आज पूर्णिमा-महोत्सव के कारण घर-घर में

गोशालक के यह पूछने पर भी, भगवान तो मौन ही रहे, परन्तु सिद्धार्थ व्यंतर ने, भगवान के शरीर में प्रविष्ट होकर गोशालक से कहा, कि—हे भद्र, आज तुम्हें कूर और बिगड़े हुए कोदों का भोजन मिलेगा, तथा एक खोटा रुपया दक्षिणा में भी मिलेगा। यह सुनकर गोशालक उत्तम भोजन के लिए दिन भर भ्रमण करता रहा, परन्तु उसे कहीं से कुछ भी न मिला। संध्या समय, एक सेवक गोशालक को अपने घर ले गया। वहाँ उसने गोशालक के आगे वही भोजन रखा, जो सिद्धार्थ व्यंतर ने कहा था। गोशालक, दिन भर का भूखा था, अतः उसने विवश होकर वही भोजन किया। भोजन कराने के पश्चात्, सेवक ने, गोशालक को एक रुपया भी दक्षिणा में दिया, परन्तु परीक्षा कराने पर, वह रुपया खोटा निकला। इस घटना पर से, गोशालक ने यह निश्चय किया, कि जो भावी होता है, वही होता है। इस प्रकार उसने अपने में नियतवाद को स्थान दिया।

चातुर्मास समाप्त होने के कारण भगवान, नालन्दी से विहार कर गये। गोशालक जब शाम को घुम कर शाला में आया, तो उसने वहाँ भगवान को नहीं देखा। तब, लोगों से भगवान के विषय में पूछ-ताछ करके गोशालक, भगवान के पास जाने को चला। कोलाक नाम के सन्निवेश में उसने लोगों को यह कहते सुना, कि बहुल ब्राह्मण को धन्य है, जिसने मुनि को दान दिया

प्रतिमा पाल कर भगवान ने अन्यत्र विहार किया।

जनपद में विचरते हुए भगवान ने विचार किया, कि मुझे बहुत कर्मों की निर्जरा करनी है, लेकिन इस आर्यदेश में, कोई न कोई परिचित मिल ही जाता है; इस कारण कर्मों की निर्जरा का ठीक योग नहीं मिलता। अतः आर्यदेश को छोड़ कर, अपरिचित अनार्यदेश में जाना ठीक होगा। यह विचार कर भगवान, लाटदेश की ओर पधारे। लाटदेश के स्वभावतः क्रूर लोग, भगवान को मुरहा-मुरहा कह कर मारने लगे। कोई तो भगवान को चोर कह कर बाँधता, कोई, अन्य राजा का गुप्तचर समझ कर, भगवान को पकड़ कर कष्ट देता और कोई कौतूहल के लिए भगवान पर शिकारी कुत्ते छोड़ता। इस प्रकार, वहाँ के अनार्य लोगों ने, ताड़ना तर्जनादि द्वारा भगवान को अनेक उपसर्ग दिये। लोग, भगवान से कुछ पूछते, परन्तु मौनधारी भगवान कुछ उत्तर न देते। तब वहाँ के लोग, क्रोध करके और भगवान को चोर डाकू धूर्त ठग कह कर, अनेक प्रकार की पीड़ा देते, परन्तु भगवान, प्रसन्नता-पूर्वक सब कष्ट सहन करते। जिस प्रकार ग्राहकों के आधिक्य से व्यापारी खेद नहीं पाता, अपितु प्रसन्न होता है, उसी प्रकार, अनार्य लोगों द्वारा दिये गये कष्टों से भगवान खेद न पाते, किन्तु कर्मों की अधिक निर्जरा होती है, यह जान कर भगवान, अधिकाधिक आनन्द पाते।

अनार्यदेश में बहुत कष्ट सहन कर भगवान पुनः आर्यदेश की ओर पधारे और अनेक ग्राम नगर में विचरते हुए पाँचवाँ चौमासा चौमासी तपयुक्त भद्दिलपुर में बिताया। भद्दिलपुर से भगवान ने विशाला की ओर विहार किया उस समय गोशालक ने भगवान से कहा—स्वामी अब मैं आपके साथ नहीं रहना चाहता। क्योंकि मुझे जब कोई मारते हैं तब आप तटस्थ की तरह देखा करते हैं और जब आप को उपसर्ग होते हैं, तब आपके साथ रहने के कारण मुझे भी उपसर्ग सहने पड़ते हैं। भगवान ने तो मौन धारण कर रखा था इसलिये वे तो कुछ न बोले लेकिन सिद्धार्थ व्यन्तर ने गोशालक की बात के उत्तर में गोशालक से कहा, कि तू, तेरी इच्छा हो, वैसा कर।

भगवान, विशाला पधारे। विशाला में भगवान एक लोहार की शाला में कायोत्सर्ग करके रहे। वहाँ, उस लोहार ने भगवान को मारने के लिए लोहा कूटने का घन उठाया, लेकिन दैवयोग से वह घन, उसी लोहार पर गिरा, जिससे लोहार मर गया। भगवान, वहाँ से विहार करके आगे बढ़े।

भगवान ने, छट्ठा चौमासा, भद्रिकापुरी में बिताया। भद्रिकापुरी में भी भगवान, चौमासी तप पूर्वक कायोत्सर्ग करके रहे थे। विशाला के मार्ग में गोशालक ने भगवान का साथ छोड़ दिया

[illegible]

भद्रिकापुरी से विहार करके भगवान, मगधदेश में विचरने लगे। भगवान ने सातवां चातुर्मास, आलभिका में, चातुर्मासिक तप करके बिताया। आलभिका से विहार करके अनेक ग्राम नगर को पावन करते हुए भगवान ने, आठवाँ चातुर्मास, चातुर्मासिक तप पूर्वक राजगृह नगर में बिताया।

भगवान ने विचार किया, कि मुझे बहुत अधिक कर्म क्षय करने हैं, अतः इसके लिए मुझे म्लेच्छ देशों में जाना उचित है। इस प्रकार विचार करके चातुर्मास की समाप्ति पर भगवान ने, वज्रभूमि लाट देश की ओर विहार किया। वहाँ के निवासी म्लेच्छ लोग, भगवान को विविध प्रकार से कष्ट देने लगे लेकिन भगवान—कर्म खपते हैं, इस विचार से—शान्त और आनन्दित ही बने रहे। उस देश में, स्थान न मिलने के कारण भगवान को शीत, ताप और वर्षा भी सहन करनी पड़ी, परन्तु धैर्य पूर्वक समस्त उपसर्गों को सहन करते हुए भगवान ने, नवाँ चातुर्मास, उसी अनार्य देश में व्यतीत किया।

अनार्य देश में चातुर्मास बिताकर भगवान, सिद्धार्थपुर की ओर पधारे। गोशालक भी साथ ही था। मार्ग में, वैशिकायन नाम का तापस, सूर्य के सन्मुख मुख करके सूर्य की आतापना ले रहा था। उसे तप के प्रभाव से तेजोलेश्या लब्धि प्राप्त थी। सूर्य की गर्मी के कारण, वैशिकायन के पड़े हुए बालों से, जुएँ

नीचे गिरती थीं, जिन्हें उठा-उठा कर वैशिकायन अपने बालों में फिर रखता जाता था। गोशालक सहित भगवान महावीर, उसी मार्ग से निकले। गोशालक, वैशिकायन के पास जाकर कहने लगा—रे तापस, तू कौन-से तत्त्व जानता है ? तू इन जुओं का शय्यान्तरी है। तू पुरुष है या स्त्री है ? आदि। गोशालक ने इस प्रकार की अनेक बातें कहीं, लेकिन समतावान वैशिकायन तापस कुछ नहीं बोला। तब गोशालक तापस को पुनः-पुनः छेड़ने लगा। अन्त में तापस, क्रुद्ध हो उठा। उसने गोशालक पर, तेजोलेश्या लब्धि का प्रयोग किया। विकराल ज्वाला की तरह तेजोलेश्या से भय पाकर गोशालक, भागकर भगवान के पास आया। तेजोलेश्या से गोशालक को भयभीत देखकर, करुणा सागर भगवान ने, गोशालक की रक्षा के लिए उस तेजोलेश्या को शीतल दृष्टि से देखा। भगवान की शीतल दृष्टि से वह तेजोलेश्या उसी प्रकार शान्त हो गई, जिस प्रकार समुद्र में गिरी हुई बिजली शान्त हो जाती है। भगवान की शक्ति देख कर, वैशिकायन विस्मित हुआ और भगवान के पास आकर नम्रता से बोला—प्रभो, मैं आपका ऐसा प्रभाव नहीं जानता था, आप मेरा अपराध क्षमा करें। इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करके वह तापस, अपने स्थान को गया।

वैशिकायन तापस के चले जाने के पश्चात् गोशालक ने

भगवान से पूछा, कि—प्रभो, तेजो लेश्या लब्धि कैसे प्राप्त होती है ? भगवान ने उत्तर दिया, कि—नियमधारी होकर छः मास तक बेले-बेले का तप करके पारणे के समय केवल मुट्ठी भर उड़द तथा अंजलि भर जल से पारणा करने से, छः मास के अन्त में तेजो-लेश्या लब्धि प्राप्त होती है। तेजोलेश्या लब्धि प्राप्त करने का उपाय जान कर, गोशालक, भगवान का साथ छोड़ कर, तेजो-लेश्या लब्धि की प्राप्ति का उपाय करने के लिए, श्रावस्ती की ओर चला। श्रावस्ती पहुँच कर वह, एक कुम्हार की शाला में ठहर, तेजोलेश्या लब्धि की प्राप्ति के लिए तप करने लगा। छः मास समाप्त होने पर, गोशालक को तेजोलेश्या लब्धि प्राप्त हुई, गोशालक ने परीक्षा के लिए, क्रोध करके एक दासी पर तेजो-लेश्या का प्रयोग किया, जिससे वह दासी, जल कर भस्म हो हो गई। तेजोलेश्या लब्धि मुझे प्राप्त है, यह जान कर गोशालक प्रसन्नतापूर्वक अन्यत्र विचरने लगा। विचरते हुए गोशालक को, भगवान पार्श्वनाथ के छः शिष्य मिले, जो अष्टांग महानिमित्त के तो पण्डित थे, परन्तु चारित्र से रहित थे। भगवान पार्श्व-नाथ के शिष्यों ने, मित्र-भाव से गोशालक को वह निमित्तज्ञान बता दिया। उस निमित्तज्ञान और तेजोलेश्या लब्धि पर गर्व करता हुआ, गोशालक, अपने आपको जिनेश्वर बताता हुआ विचरने लगा।

जनपद में विचरते हुए भगवान महावीर श्रावस्ती पधारे। भगवान ने, दसवाँ चातुर्मास श्रावस्ती में ही किया। श्रावस्ती में भी भगवान, चातुर्मास तप करके रहे थे। चातुर्मास के अन्त में, पारणा करके भगवान ने श्रावस्ती से विहार कर दिया।

विचरते हुए भगवान महावीर भद्र, महाभद्र और सर्वतो-भद्र तप करने के लिए, सोलह दिन तक एक स्थान पर कायोत्सर्ग-पूर्वक, किसी एक पदार्थ पर दृष्टि लगा कर रहे। पश्चात् उस स्थान से विहार करके पेढाला नगरी के समीपस्थ उद्यान में अष्टम तप पूर्वक, एक शिला पर कायोत्सर्ग करके भगवान एक ही पुद्गल पर दृष्टि जमा, प्रतिमाधारी हुए।

सौधर्म सभा में बैठे हुए शक्रेन्द्र ने, अवधिज्ञान से, भगवान को ध्यानमग्न देखा। वहीं से भगवान को वन्दन करके शक्रेन्द्र, सभा में भगवान की प्रशंसा करते हुए कहने लगे, कि इन ध्यानस्थ परमात्मा को विचलित करने में, कोई भी देव दानव या मनुष्य समर्थ नहीं है। इन्द्र द्वारा की गई भगवान की प्रशंसा सुन कर, महामिथ्यात्वी और रौद्रपरिणामी संगम नाम का सामानिक देव, इन्द्र से कहने लगा—स्वामी, आप बार-बार मनुष्यों की प्रशंसा करके हम देवों का अपमान करते हैं, कोई भी मनुष्य, हम देवों से अधिक सामर्थ्य क्या रखता होगा! आप जिनकी प्रशंसा करते हैं, उनको मैं अभी विचलित करके आपको बताता,

है, कि देव, मनुष्यों की अपेक्षा कैसे शक्ति-सम्पन्न होते हैं। संगम देव की बात, इन्द्र को अनुचित तो मालूम हुई, लेकिन इन्द्र यह विचार कर चुप रहे, कि मेरे कुछ बोलने से इस देव को यह कहने की जगह मिल जावेगी, कि इन्द्र की सहायता से ही अरिहन्त तप करते हैं।

दुष्ट प्रकृतिवाला संगम देव, गर्व-पूर्वक भगवान के समीप आया और भगवान को ध्यान से विचलित करने के लिए, बड़े-बड़े उपसर्ग देने लगा। उसने रजवृष्टि की। पश्चात् वज्रमुखी चींटियाँ, डाँस, प्रचण्ड चोंच वाली घींमेल, बड़े-बड़े डंक वाले बिच्छू, न्योले, साँप, मूसे, गज, व्याघ्र, पिशाच, सिद्धार्थ राजा, त्रिशला रानी, दावानल, चाण्डालादिक क्रूर स्वभाववाले मनुष्य, तीक्ष्ण चोंच वाले पक्षी, प्रचण्ड वायु, बंटोलिया, चक्र, आदि उत्पन्न किये। इसी प्रकार, कामदेव के अनुरूप उपवन सहित स्त्रियाँ भी वैक्रिय की और एक ही रात में सब मिला कर बीस उपसर्ग भगवान को दिये। संगम द्वारा दिये हुए उपसर्गों से भगवान को पीड़ा तो अवश्य हुई, परन्तु भगवान, ध्यान से किंचित् भी विचलित नहीं हुए। जब वह देवता अपने कृत्यों में असफल रहा और थक गया, तब बहुत लज्जित हुआ। सूर्योदय हो जाने से, भगवान, प्रतिमा पालकर विहार कर गये, तब भी वह दुष्टबुद्धिवाला देव, 'मैं इन्द्र के सामने किस मुँह से जाऊँगा,' इस विचार से,

छः महीने तक भगवान के साथ-साथ रहा। वह देव, जहाँ भगवान भिक्षा के लिए जाते, वहाँ की आहार को अनेषणिक कर देता और इसी प्रकार भगवान को और भी कष्ट देता। अनेक उपाय करने पर भी जब वह देव, अपने प्रयत्न में सफल न हुआ, तब निराश हो भगवान को नमस्कार करके भगवान से प्रार्थना करने लगा — 'भगवन्! इन्द्र द्वारा आपकी प्रशंसा सुनकर, आपको अप्रशंसनीय बनाने के लिए मैंने, आपको अनेक कष्ट दिये, लेकिन आप उन कष्टों में भी अपने ध्यान पर डटे रहे, जिस प्रकार तपाने पर भी सोना अपना रंग नहीं छोड़ता। आप मेरे अपराध क्षमा करिये और मुझ पर दया करिये। इस प्रकार भगवान से क्षमा प्रार्थना करके वह संगम देव अपने स्थान को गया।

इन्द्रादि देव, गीत नृत्य बन्द करके संगम की चेष्टा का परिणाम देख रहे थे। छः मास पश्चात् जब संगम देव असफल होकर, मलिन मुख और लज्जित वदन से सुधर्मसभा में आया, तब इन्द्र ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया और उन्होंने उच्चस्वर में सब देवताओं से कहा, कि—यह संगम, महापापी है; इसका मुख देखने से भी पाप लगता है; यदि यह यहाँ रहेगा, तो इसके पापपुद्गल अपने को भी चिपटना संभव है, अतः इसे देवलोक से बाहर निकाल दिया जावे। ऐसा कह कर इन्द्र ने संगम देव

पर प्राणघातक-प्रहार किया। इन्द्र की घोषणा सुन कर, आत्म-रक्षक देव, संगम को धक्के मारने लगे। तब संगम, अपमानित होकर, मेरु पर्वत की चूलिका पर रहने लगा। इन्द्र ने, संगम की देवियों के सिवा संगम के परिवार को भी संगम का साथ देने से रोक दिया।

इधर भगवान ने, गोकुल ग्राम में, छःमासी तप का पारणा किया। देवताओं ने, पाँच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की। अनेक इन्द्र और देव, भगवान की सेवा में उपस्थित होकर भगवान की दृढ़ता की प्रशंसा करने लगे और फिर भगवान को वन्दन करके अपने-अपने स्थान को गये।

गोकुल ग्राम से विहार करके भगवान, विशाला नगरी पधारे। भगवान ने ग्यारहवाँ चातुर्मास, विशाला नगरी में ही, बलदेव के मन्दिर में चौमासी तप-पूर्वक प्रतिमा धारण करके बिताया। विशाला में, एक जिनदास नाम का श्रेष्ठि —जो श्रावक था—रहता था। जिनदास वैभवहीन होगया था, इसलिए लोग उसे जीर्ण सेठ कहते थे। जीर्ण सेठ, प्रतिदिन भगवान की सेवा करता हुआ, पारणार्थ दान देने की भावना करता था, लेकिन जब भगवान भिक्षा का समय हो जाने पर भी जीर्ण के यहाँ आहार लेने नहीं पधारते, तब जीर्ण सेठ यह विचार करता, कि भगवान का आज भी तप होगा, भगवान कल पधारेंगे। इस प्रकार

हो, कछोटा धारण किये हो, एक पांव चौखट (देहली) के बाहर हो और एक पांव चौखट के भीतर हो, हाथों में हथकड़ियां हों, पांवों में बेड़ी हो, उड़द के बाकले हों, जिन्हें वह सूप के कोने में लिये हो, दान की भावना कर रही हो और एक आँख हर्ष-पूर्ण तथा दूसरी आँख अश्रुपूर्ण हो। ऐसी कन्या से भिक्षा मिलेगी, तभी मैं—इस तप के अन्त में—पारणा करूँगा।

इस प्रकार का कठिन अभिग्रह लेकर भगवान विचरने लगे। भगवान को विचरते हुए, पाँच दिन कम छः मास हो गये, परन्तु अभिग्रह के अनुसार योग न मिला। कौशाम्बी के राजा सन्तानिक और उनकी रानी मृगावती ने, भगवान का अभिग्रह जानने और भगवान को पारणा कराने की बहुत चेष्टा की, परन्तु वे असफल ही रहे। भगवान जहाँ जाते, उस घर के लोग पहले तो हर्षित होते, लेकिन जब भगवान—अभिग्रह का योग न मिलने से—बिना आहार लिये वापस जाते, तब लोगों में निराशा और चिन्ता होती।

दोपहर का समय है। सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से भूमि को तपा रहा है। लोग, गर्मी से बचने के लिए अपने-अपने घरों में आनन्द कर रहे हैं। ऐसे समय में धनावह सेठ ने, अपने घर के तहखाने में बन्द एक विपद्ग्रस्त राजकन्या को, तहखाने से बाहर निकाला। वह कन्या अत्यन्त रूपवती थी, परन्तु उसके

घर में वापस लौट चले। भगवान को लौटते देख कर, सती के दुःख का पार न रहा। उसकी आँख से, अश्रु-धारा निकल पड़ी। भगवान ने फिर कर देखा, तो उन्हें, अभिग्रह की तेरहों बातें पूरी दिखाई दीं। वहीं समय धनावह सेठ के द्वार पर पधार कर भगवान ने, कर-पात्र में चन्दनबाला का उड़दबाकले का दान ग्रहण किया। भगवान को दान देते ही, देवताओं ने, चन्दनबाला के हाथ पाँव की हथकड़ी-बेड़ी को स्वर्णमय के आभूषणों में परिणत कर दिया और रत्नवृष्टि द्वारा दान की महिमा की।

कौशाम्बी से विहार करके भगवान, चम्पानगरी पधारे। भगवान ने, बारहवाँ चातुर्मास, चम्पा नगरी में—स्वातिदत्त ब्राह्मण की अग्निहोत्र शाला में रह कर—बिताया। चातुर्मास की समाप्ति पर भगवान ने, चम्पानगरी से विहार कर दिया और जनपद में विचरने लगे।

भगवान, विचरते हुए, एक जगह कायोत्सर्ग करके रहे। भगवान ने, त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में जिस शैया-रक्षक के कानों में तपाया हुआ शीशा डलवाया था, वह शैया-रक्षक का जीव, ग्वाला हुआ था। भगवान को देखकर ग्वाले ने—पूर्वभव का बैर होने के कारण—भगवान के कानों में लकड़ी की खूँटियाँ ठोक दीं, और किसी को दिखाई न पड़े, इसलिए उसने खूँटियों का बाहरी भाग काट कर बराबर कर दिया। भगवान ने, इस

गये। तब इन्द्रभूति गर्व-पूर्वक कहने लगे, कि—मनुष्य तो भूलते ही हैं, परन्तु देव भी भूलते हैं! इतने ही में किसी ने कहा, कि महासेन वन में, सर्वज्ञ भगवान महावीर पधारे हैं और ये देवगण, उन्हीं को वन्दन करने जा रहे हैं। यह सुनकर इन्द्रभूति कहने लगे—क्या कोई और भी सर्वज्ञ है! मैं अभी जाकर सर्वज्ञ कहानेवाले महावीर का गर्व दूर करता हूँ।

अपने पाँच सौ शिष्यों को साथ लेकर इन्द्रभूति, भगवान महावीर के समवशरण में आये। भगवान की शान्त-मुद्रा देख कर, इन्द्र भूति के विचार कुछ और ही हो गये। इतने ही में, भगवान के मुख से 'हे इन्द्रभूति गौतम, तुम आये?' यह सुन कर इन्द्रभूति आश्चर्य में पड़ गये, कि ये मेरा नाम कैसे जानते हैं! फिर यह विचार कर उन्होंने अपना आश्चर्य मिटाया, कि मेरा नाम प्रसिद्ध है, इसलिए ये जानते हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। मेरा नाम बता देने के कारण ही मैं इन्हें सर्वज्ञ नहीं मान सकता, सर्वज्ञ तो तभी मान सकता हूँ, जब ये मेरे हृदय के संशय को जान कर उसे मिटावें। इन्द्रभूति इस प्रकार का विचार कर ही चुके थे, कि भगवान ने कहा—हे इन्द्रभूति, तुम्हारे हृदय में जीव विषयक शंका है, कि जीव है या नहीं? परन्तु वास्तव में जीव है, और इन-इन प्रमाणों से जीव का अस्तित्व सिद्ध है। अपने हृदय का संशय और उसका समाधान सुनकर,

था, उस सती चन्दनबाला ने यह प्रण किया था, कि भगवान महावीर को केवलज्ञान होते ही, मैं, भगवान महावीर के पास दीक्षा लूँगी। देवों ने, चन्दनबाला को भगवान की सेवा में उपस्थित किया। वहाँ उपस्थित अन्य स्त्रियों सहित चन्दनबाला ने भगवान का उपदेश सुना, जिससे अन्य स्त्रियों को भी संसार से वैराग्य हो गया और उन्होंने, चन्दनबाला के नेतृत्व में भगवान के पास से संयम स्वीकार किया।

भगवान जनपद में विचरने लगे। एक समय भगवान, विचरते हुए ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में पधारे। वहाँ की परिषद्, भगवान को वन्दन करने के लिए आई, जिसमें ऋषभदत्त ब्राह्मण और उसकी पत्नी देवानन्दा भी थी। सब लोग, भगवान को वन्दना करके बैठ गये। उस समय, देवानन्दा को आप ही आप ऐसा हर्ष हुआ, कि रोमांच हो आया और उसके स्तनों से दूध की धारा निकल पड़ी। देवानन्दा की प्रसन्नता और उसके स्तनों से निकलती हुई दूध की धारा देख कर, श्री इन्द्रभूति गणधर ने, भगवान से इसका कारण पूछा। भगवान ने उत्तर में फर्माया — हे इन्द्रभूति गौतम, यह देवानन्दा, मेरी माता है। दसवें स्वर्ग का आयुष्य पूर्ण करके मैं इसी के गर्भ आया था। मैं, बयासी रात तक देवानन्दा के गर्भ में रहा। पश्चात्, इन्द्र की आज्ञा से हरिणगमेषी देव ने, मुझे त्रिशला देवी के गर्भ में पहुँचाया।

धर्माचार्य को उसके शिष्यों सहित जला कर भस्म कर दूँगा ! आनन्द मुनि ने, लौटकर गोशालक की कही हुई बात भगवान से कही और भगवान से प्रश्न किया, कि—हे प्रभो, क्या गोशालक आपको जलाने में समर्थ है ? भगवान ने उत्तर दिया, कि—सर्वज्ञ तीर्थङ्कर पर गोशालक की शक्ति नहीं चल सकती हाँ वह संताप अवश्य दे सकता है। इतने ही में, गोशालक, भगवान के पास आया और भगवान को यद्वा-तद्वा बोलने लगा। भगवान के शिष्य, सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनि को गोशालक की बात बुरी लगी, इससे उन्होंने गोशालक से कहा कि—रे गोशालक, जिन गुरु की कृपा से तू जीवित रह सका है, उन्हीं गुरु को इस प्रकार बोलता है ! सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनि का कथन सुन कर गोशालक का क्रोध बढ़ गया। इसने, इन दोनों मुनि पर तेजोलेश्या छोड़ी, जिससे दोनों मुनि, मृत्यु को प्राप्त हुए और देव गति में उत्पन्न हुए। पश्चात् जब भगवान ने, गोशालक को शिक्षा रूप कुछ कहा, तब गोशालक ने भगवान पर भी तेजोलेश्या का प्रयोग किया; लेकिन भगवान पर तेजोलेश्या अपना भस्म करने का प्रभाव न दिखा सकी। वह, भगवान की प्रदक्षिणा करके वापस लौट गई और उसे छोड़नेवाले गोशालक में ही प्रवेश कर गई; जिससे गोशालक को पीड़ा हुई और वह, सातवें दिन मर गया। गोशालक की छोड़ी हुई तेजोलेश्या की हवा

निरन्तर उपदेश देते हुए अयोगी अवस्था को प्राप्त हो, सब कर्मों को क्षय करके निर्वाण पधारे। इन्द्र, देवताओं और मनुष्यों ने, अश्रुपूर्ण नेत्र से, भगवान के त्यागे हुए शरीर का अन्तिम संस्कार किया।

जिस रात में भगवान महावीर सिद्ध गति को प्राप्त हुए, उसी रात में इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। नव गणधर, भगवान के मोक्ष पधारने के पहले ही मोक्ष पधार चुके थे, इसलिए भगवान के पट्ट पर, सुधर्म स्वामी नाम के गणधर को नियुक्त किया गया। सुधर्मा स्वामी की परम्परा, आज भी विद्यमान है, जो पंचमकाल के अन्त तक रहेगी।

भगवान महावीर, अट्ठाइस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे। दो वर्ष तक, त्याग-प्रतिज्ञा में रहे। बारह वर्ष साढ़े छः मास छद्मस्थ-अवस्था में और कुछ कम तीस वर्ष केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार सब बहत्तर वर्ष का आयुष्य भोगकर भगवान महावीर, भगवान श्री पार्श्वनाथ के निर्वाण को ढाई सौ वर्ष बीत जाने पर निर्वाण पधारे।

—○—

प्रश्न :—

१—भगवान महावीर के सब भव-भ्रमण का संक्षिप्त इतिहास क्या है?

११—भगवान ने, किस अवस्था में दीक्षा ली और उससे पहले दीक्षा क्यों नहीं ली ?

१२—भगवान की जन्मतिथि, दीक्षातिथि, केवलज्ञानतिथि और निर्वाणतिथि बताओ।

१३—भगवान को बड़े उपसर्ग किस-किस के द्वारा किस-किस रूप में सहने पड़े थे ?

१४—छद्मस्थपने में भगवान के चातुर्मास कहाँ-कहाँ हुए और कितने-कितने ?

१५—भगवान ने सब कितना तप किया था और विशेषतः किस रूप में ? किसी तप के साथ कोई कठिन अभिग्रह भी था ? यदि था तो कैसा और वह किसके द्वारा किस प्रकार पूरा हुआ ?

१६—संगमदेव ने, भगवान को क्यों और किस रूप में उपसर्ग दिये थे, तथा उभयपक्ष के लिए क्या परिणाम हुआ ?

१७—भगवान महावीर और गोशालक के बीच कौन-कौन-सी घटना घटी थी और परिणाम क्या निकला ?

१८—चण्डकौशिक सर्प और भगवान के बीच में क्या घटना घटी थी ?

१९—भगवान, अनार्य देश में क्यों पधारे थे और वहाँ क्या-क्या कष्ट भोगने पड़े ?

२०—भगवान ने गोशालक का क्या उपकार किया था ?

२१—भगवान के सर्व प्रथम शिष्य का नाम क्या था? किस घटना के वश हो भगवान के शिष्य हुए थे?

२२—भगवान महावीर के संघ की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी?

२३—जामाली के विषय में क्या जानते हो?

२४—भगवान महावीर और भगवान अरिष्टनेमि के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा?

—०—

उपसंहार।

संसार में, तीर्थङ्कर-भगवान उत्कृष्ट पुरुष माने जाते हैं। वे जगत-जीवों के उपकारी होने के कारण इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र एवं नरेन्द्र भी इनके चरणों में सिर मुकाते और अपने को कृत्य-कृत्य मानते हैं। अन्य धर्मों में अवतारों के विषय में जैसा असंगत वर्णन है वैसा असंगत वर्णन जैनधर्म में नहीं है। जैनधर्म किसी व्यक्ति विशेष को महत्व नहीं देता वह कर्म प्रधान सिद्धान्त का समर्थक है। ऊपर के चरितानुवाद से भलीभांति प्रकट है कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी सद्गुणों का सेवन करने में उन्नति की चर्मसीमा तक पहुँच सकता है। और संसार में महापुरुष माने जाने पर भी सद्गुणों का त्याग करने एवं मोहमाया में लिप्त रहने से दुर्गति का अधिकारी बन जाता है। तीर्थङ्कर भगवान भी हमारे जैसे मनुष्य ही होते हैं; अन्तर केवल गुणों का है। प्रत्येक आत्मा को अपनी उन्नति करने और तीर्थङ्कर बनने का अधिकार है। तीर्थङ्करनामकर्म उपार्जन करने के लिए सम्यक्त्वपूर्वक बीस बोलों का आराधन आवश्यक है जो शास्त्रकार ने इस प्रकार बताये हैं।

[illegible] गुणानुवाद [illegible] करना—[illegible] गुणधारी [illegible] इनके भी गुण [illegible] चिन्तन मनन करना—९ [illegible] का विनय करना [illegible] आवश्यक ([illegible]) करना—१२ [illegible]) का सेवन करना—१३ [illegible] और [illegible] बारह प्रकार का तप करना— [illegible] मुनियों की [illegible] करना—[illegible] वात्सल्य करना— [illegible] अपूर्व ज्ञान सम्पादन करना [illegible] सिद्धान्तों [illegible] करना—[illegible] जैनधर्म की [illegible] से भिन्न करने [illegible] होता है।

तात्पर्य यह है कि, जैनधर्म, कर्म को प्रधानता देता है व्यक्ति विशेष को नहीं। जो जैसा करता है वैसा ही बन जाता है। इस चरित्र से हमें यह शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये कि, हम भी दुर्गुणों और दुर्व्यसनों को त्याग, सद्गुणों को अपनावें; जिससे हम भी अपनी आत्मा को पूजक से पूज्य बनालें।

यहाँ प्रश्न यह होता है कि यदि जैनधर्म कर्म प्रधान है, तब हमें तीर्थंकरों का चरित्र पढ़ना और उनका भजन स्मरण क्यों करना चाहिये ? इससे क्या लाभ है ? इसका समाधान यह है कि—

१. तीर्थंकर भगवान का चरित्र हमारे लिए मार्गदर्शक है, इसके सहारे, हम भी अपनी आत्मा को उस दशा के लिए अग्रसर कर सकते हैं।

२. तीर्थंकरों का जन्म जगत् के कल्याणार्थ होता है। वे, अज्ञानी जीवों को वस्तुस्थिति का सच्चा ज्ञान करा देते हैं, जिससे संसार के जीव स्व पर कल्याण करने में समर्थ हो जाते हैं।

३. तीर्थंकरों के पवित्र कल्याणक एवं जीवन की [illegible] [illegible] हुई और [illegible] हैं, [illegible] द्वारा [illegible] हो चुके हैं।

४. [illegible] के [illegible] है कि [illegible] के [illegible] कर देते हैं, [illegible] [illegible] —